• वर्ष ६६ • अंक १५ • मूल्य ₹ २० अगस्त (प्रथम) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

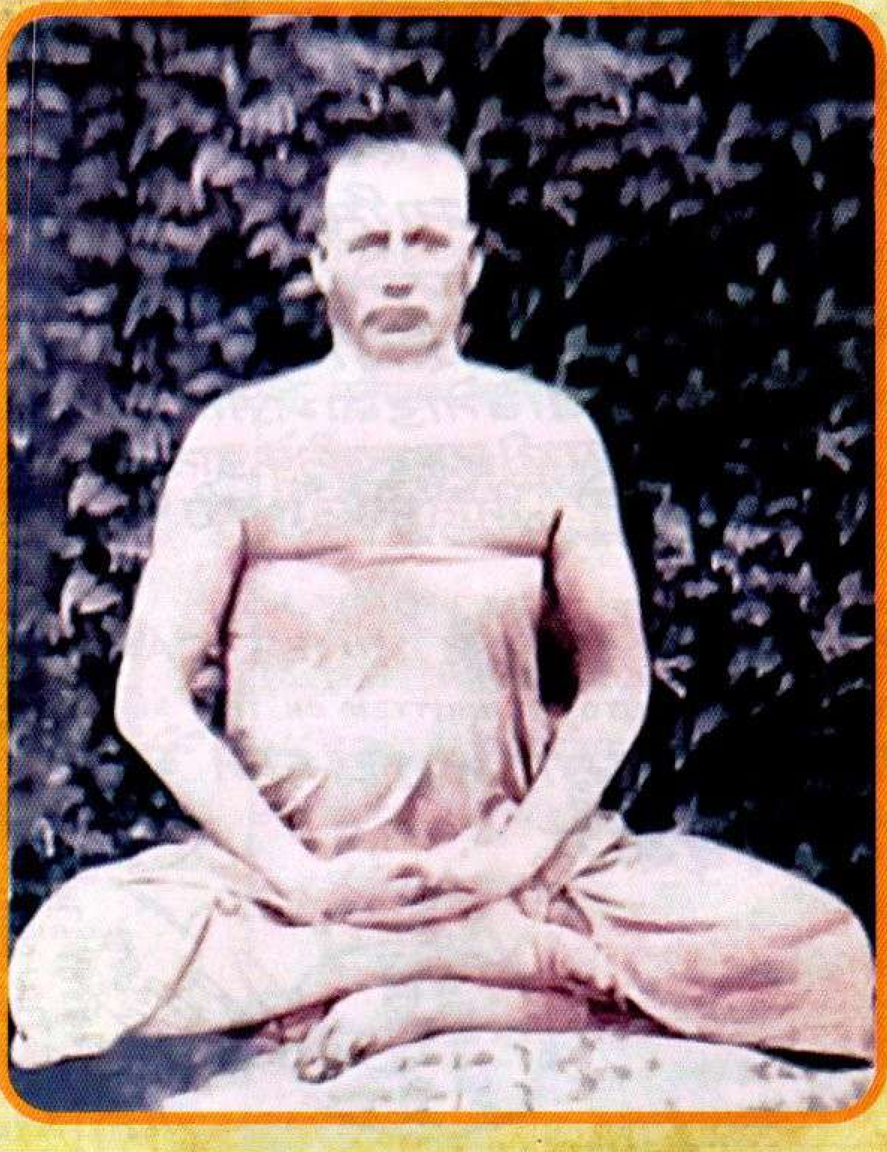

महान् समाज सुधारक, आर्य समाज के संस्थापक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

ऋषि दयानन्द संवत् १९२४ (सन् १८६७) के कुम्भ के मेले में हरिद्वार जाते हुए मेरठ में ठहरे थे। उसी समय उनका यह चित्र लिया गया था। चित्र से भी ऋषि दयानन्द की आयु ३५-४० के मध्य की प्रतीत होती है, और मुखमण्डल बड़ा तेजस्वी है। श्री मामराज जी को यह चित्र सन् १९२६ में ऋषि दयानन्द के पत्रों का अन्वेशण करते हुए मेरठ से मिला था।

इतिहास के हस्ताक्षर

[२६.२.१८८३ ई०]

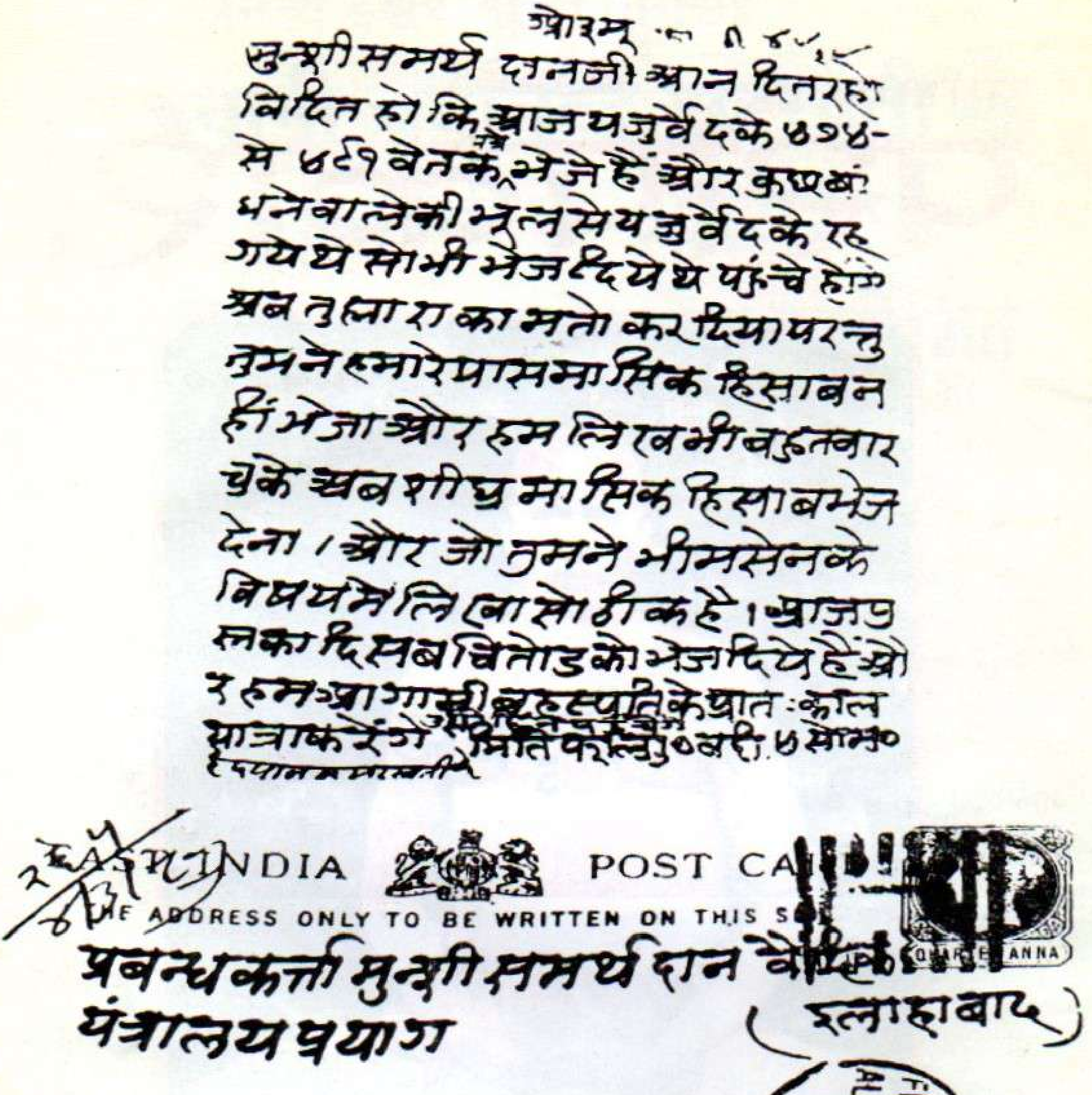

मुन्शी समर्थदास जी आनन्दित रहो।

विदित हो कि आज यजुर्वेद के ४७४ से ४९१ वे तक पत्रे भेजे हैं और कुछ बांधने वाले की भूल से यजुर्वेद के रह गये थे सो भी भेज दिये थे पहुंचे होंगे अब तुम्हारा काम तो कर दिया परन्तु तुमने हमारे पास मासिक हिसाब नहीं भेजा और हम लिख भी बहुत वार चुके अब शीघ्र मासिक हिसाब भेज देना। और तो तुम ने भीमसेन के विषय में लिखा सो ठीक है। आज पुस्तकादि सब चित्तौड़ को भेज दिये हैं और हम आगामी बृहस्पति के प्रात:काल यात्रा करेंगे उसी दिन पहुंचेंगे।

मिति फाल्गु० बदी ४ सोम० [संवत् १९३९, २६ फरवरी १८८३]

(दयानन्द सरस्वती)

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।

वर्ष : ६६ अंक : १५

दयानन्दाब्द: २००

विक्रम संवत् – श्रावण कृष्ण २०८१

कलि संवत् – ५१२५

सृष्टि संवत् – १,९६,०८,५३,१२५

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,

केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

०८८९०३१६९६१

मुद्रक- डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

८२०९५८६१६६

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

अगस्त प्रथम, २०२४

अनुक्रम

०१. उत शूद्र उतार्ये	सम्पादकीय	०४
०२. मैं अपनी सन्तान को देना...	डॉ. रामवीर	०६
०३. आर्यसमाज के सैद्धान्तिक साहित्य	प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०७
०४. विद्वानों के विचारार्थ क्या यज्ञों में	स्वामी चिदानन्द सरस्वती	११
०५. मोक्ष और उसकी प्राप्ति के साधन-३	पं. बालकृष्ण शर्मा	१८
०६. हमारे दैनिक जीवन में आर्यसमाज...	प्रो. विनय कुमार	२२
०७. दुकान (स्टॉल) आवंटन		२७
०८. मनुष्यों को ईश्वर से बुद्धि...	श्री कन्हैयालाल आर्य	२८
०९. भव्य एवं दिव्य ऋषि मेला समारोह		२९
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		३१
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३२
१०. संस्था की ओर से....		३३
११. निवेदन		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएं
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये।

किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

उत शूद्र उतार्ये

सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से समाज को चार भागों में विभक्त किया गया। इस विभाजन को क्रमश: ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इस नाम से अभिहित किया गया। इस विभाजन को 'वर्ण' तथा इस व्यवस्था को वर्ण व्यवस्था कहते हैं। 'वर्ण' का अभिप्राय है- वरण या चयन करना। अर्थात् जिस व्यवस्था को व्यक्ति अपने अनुरूप मानकर चुने, वही उसका 'वर्ण' है। सामाजिक ढांचे में व्यक्ति की योग्यता तथा सामर्थ्य भी तदनुरूप होने पर ही उसकी स्वीकार्यता रही है।

समय के प्रवाह के साथ बहुत कुछ परिवर्तित होता रहता है। 'वर्ण' शब्द का अर्थ और यह व्यवस्था भी परिवर्तित हुई और रूढ़ हो गई। इसकी रुढ़ि का दुष्परिणाम यह हुआ कि व्यवस्था अपने यथार्थ और उद्देश्य से दूर जाकर आलोचना का विषय बन गई है। इस व्यवस्था के प्रथम तीन वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की सामाजिक अवस्थिति की अपेक्षा चतुर्थ वर्ण 'शूद्र' के प्रति न तो वह सामाजिक दृष्टि रही, जो अन्य तीन वर्णस्थ के प्रति है और न ही वह समता का भाव जो सामाजिक सन्तुलन के लिए अपरिहार्य है। यह सब विशेषत: उस मध्यकाल में हुआ, जिसमें मूल शास्त्रीय निर्देशक तत्त्वों को यथानुमत ढंग से व्याख्यात किया जाने लगा।

वैदिक व्यवस्थानुसार मनुष्य समाज के दो भाग सम्भव हैं-

१. आर्य- प्रगतिशील, सद्व्यवहारयुक्त अर्थात् कथनी और करनी में एकरूप, कर्त्तव्यपरायण तथा विवेकवान्।

२. अनार्य अथवा दस्यु- उपर्युक्त गुणों से रहित अर्थात् मानवोचित व्यवहार से शून्य। कार्य अथवा श्रमविभाजन के आधार पर आर्य को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्गों में विभक्त किया गया। इस व्यवस्था में शिक्षा समाप्ति पर्यन्त सबको समान अवसर एवं सुविधाएँ देकर इस योग्य बनाना कि अपनी रूचि और योग्यता-सामर्थ्य के अनुसार किसी एक का वरण-चुनाव कर सके। कालान्तर में यह व्यवस्था चयन की अपेक्षा जन्मना जाति के रूप में रूढ़ हो गई।

वर्तमान में यदा-कदा चर्चा के माध्यम से तथा सोशल मीडिया के यूट्यूब चैनल पर कुछ निहित स्वार्थ अथवा पूर्वाग्रह के कारण यह कहते हैं कि शूद्र तो अनार्य हैं। ये आर्य पदवाच्य नहीं है। दीर्घकाल तक ब्राह्मणादि ने इनका शोषण इसीलिए किया है कि ये अनार्य हैं। इस दुष्प्रचार के कारण अपने को दलित कहने वाले कुछ युवा अपने को वैदिक संस्कृति का विरोधी कहते और मानते हैं। इससे सामाजिक सौहार्द को क्षति पहुँच रही है। इससे वर्ग विद्वेश भी बढ़ता दिखाई देता है।

सामाजिक समरसता को विखण्डित करने की दुरभिसन्धि के कारण इस भेदभाव का आधार **शूद्र को 'आर्य' इस संज्ञा से बाहर कर उसे अनार्य मानना है**। शूद्र को आर्येतर (अर्थात् अनार्य कहने का मूल एक मन्त्रांश को माना जाता है) जैसे-

'उत शूद्र उतार्ये'- यहां पढ़े गए शूद्रे और आर्ये के मध्य उत पद है। उत का सामान्य अर्थ है- और। इस प्रकार 'शूद्र और आर्य' यह अर्थ कर कहा जाता है कि इस मन्त्र में दोनों को अलग-अलग पढ़ा है। शूद्र और आर्य कहने से शूद्र आर्य के अन्तर्गत नहीं है। किसी भी पद अथवा वाक्य को यदि सन्दर्भ से हटाकर देखा जाए तो प्राय: वह अपने मुख्य अर्थ को व्यक्त नहीं करता है। सही अर्थ जानने के लिए इस मन्त्रांश को भी सम्पूर्ण मन्त्र के साथ व्याख्यात करना चाहिए। तभी निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि क्या सच में इसका वही अर्थ है, जो कहा जा रहा है? मन्त्र को उद्धृत कर उसके अर्थ पर विचार प्रस्तुत हैं-

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ।।

अथर्व. १९.६२.१

इस मन्त्र के प्रत्येक पद को पृथक्-पृथक् समझने के लिए इसका पाठ करना आवश्यक है। यहां पहले आचार्य सायण का अभिमत पदपाठ उद्धृतकर यथोचित पदपाठ किया जाएगा-

पदपाठ- **प्रियम्। मा। कृण। देवेषु। प्रियम्। राजऽसु। मा। कृण। प्रियम्। सर्वस्य। पश्यतः। उत। शूद्रे। उत। आर्ये।।**

इस आधार पर मन्त्र का सरल अर्थ होगा- कि मा= मुझे, देवेषु=विद्वानों में (विद्वानों का), प्रियम्=प्रिय, कृणु= कर दीजिए। मा=मुझे, राजसु=राजन्य वर्ग में/का, प्रियम्=प्रिय, कृणु=कर दीजिए। सर्वस्य=सभी, पश्यतः=देखनेवालों में/का, प्रियम्=प्रिय, उत=और/तथा शूद्रे=शूद्र में/का, उत=और आर्ये=आर्य में/का प्रिय कर दीजिए अर्थात् मैं सभी का प्रेमपात्र बनूं। (यह अर्थ पदपाठ के आधार पर है।)

इस मन्त्र के पदपाठ में सायण ने 'उतार्ये' इस पद का 'उत+आर्ये' यह पदच्छेद किया है। यह पदच्छेद त्रुटिपूर्ण है, क्योंकि-

१. मन्त्र में देवेषु, राजसु, शूद्रे यह तीन पद स्पष्ट हैं। राजसु पद राजन्य-क्षत्रिय का वाचक है। शूद्र पद स्पष्ट ही है। देवेषु (देव का सप्तमी बहुवचन) पद ब्राह्मण का वाचक है। तद्यथा- **'एते वै देवा अहुतादो यद् ब्राह्मणः'**-मै. १.४.६, गोपथ. २.१६ तथा- **'विद्वांसो हि देवाः'**-मा. श. ३.७.३.१०; **'विप्रो विप्रस्येति प्रजापतिर्वै विप्रो देवा विप्राः'**-मा. श. ६.३.१.१६ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रमाणों से स्पष्ट है कि देवेषु का अर्थ ब्राह्मणेषु सुसंगत है।

इस प्रकार चातुर्वर्ण्य में से तीन का शब्दोपात्त उल्लेख है। एक वर्ण (वैश्य) सायण के अनुसार नहीं है। वैसे भी सायण ने उक्त मन्त्र का व्याख्यान नहीं किया है। मन्त्र का तात्पर्य 'सर्वप्रियत्व' वैश्य वर्ण को छोड़ देने पर किस प्रकार पूर्ण होगा? अतः वैश्य का वाचक कोई पद होना चाहिए।

२. 'ऋ' इस धातु से 'ण्यत्' प्रत्यय (ऋहलोर्ण्यत्. पा. ३.१.१२४) होकर 'आर्य' पद निष्पन्न होता है। इसका अर्थ-प्रगतिशील, सभ्य, सज्जन, साधु आदि है। यह जाति विशेष का वाचक न होकर संस्कृत वाङ्मय में विशेषण के रूप में प्रयुक्त है। रामायण, महाभारत आदि के साथ ही आधुनिक काव्य एवं नाटक ग्रन्थों में भी विशेषण रूप में देखा जा सकता है।

३. 'ऋ' इसी धातु से **'अर्यः स्वामिवैश्ययोः'** पा-३.१.१०३ सूत्रानुसार 'स्वामी' एवं 'वैश्य' के अभिधेय होने पर 'यत्' प्रत्ययान्त 'अर्यः' शब्द निष्पन्न होता है। इसके दो अर्थ हैं- १. स्वामी, २. वैश्य

'यतोऽनावः' पा-६.१.२१३ सूत्र से इसे आद्युदात्तत्व प्राप्त है- अर्यः, किन्तु 'अर्यस्य स्वाम्याख्या चेत्'-फिट् १.१७ से 'स्वामी' अर्थ में अन्तोदात्त-अर्यः होता है। वैश्यवाची 'अर्यः' पद आद्युदात्त ही होता है।

अब प्रकृत मन्त्र के विवेच्य स्थल- उत शूद्र उतार्ये के पदपाठ-पदच्छेद पर विचार करते हैं- उत शूद्रे उतार्ये में **उतार्ये पद सन्धियुक्त है। इसका पदच्छेद 'उत+अर्य' इस प्रकार किया जाना चाहिए,** क्योंकि मन्त्र में तीन वर्णों का शब्दोपात्त उल्लेख है। अतः चतुर्थ अवशिष्ट 'वैश्य' का वाची 'अर्यः' पद ही साकांक्ष है।

पदच्छेद में अर्यः/अर्य मानने में किसी भी प्रकार की विसंगति नहीं है। जैसे- 'उत' पद अन्तोदात्त है। 'अर्य' पद आद्युदात्त है। उदात्त से परे उदात्त होने पर सन्धियुक्त रूप भी उदात्त ही रहता है। यहां- उत्अ+अर्ये में तकारोत्तरवर्ती अकार और अर्ये के आदि अकार को सवर्ण दीर्घ आ होकर- उत् आर्य=उतार्य शुद्ध रूप ही है। यद्यपि 'उत+आर्ये' से भी 'उतार्ये' बन जाएगा, किन्तु उसे मानने पर अर्थ स्फुट नहीं हो रहा है। 'उत+अर्ये' मानने पर वह संगत तो है ही अर्थस्वारस्य भी सुरक्षित है।

४. अथर्ववेद के ६.३४.४; १८.३.२३; २०.१८.५; २०.३४.४-५; २०.५६.६; २०.६१.१; २०.८६.४; २०.८९.१; २०.९५.४; २०.१२६.१; २०.१२६.३ इन बारह मन्त्रों में सर्वत्र 'अर्य' पद अन्तोदात्त है। व्याकरण के नियम से यह 'स्वामी' का वाचक है। सायण ने ६.३४.४; १८.३.२३ तथा २०.१८.५ में 'अर्य' का अर्थ 'स्वामी' ही किया है। दो मन्त्रों २०.३४.४-५ 'अर्यः' इस अन्तोदात्त का अर्थ 'अरेः' किया है। शेष सात मन्त्रों की व्याख्या नहीं की है।

५. अथर्ववेद के एक ही मन्त्र में आद्युदात्त 'अय' के लिए अवकाश है। जब यह नियम है कि अन्तोदात्त का अर्थ 'स्वामी' तथा आद्युदात्त का 'वैश्य' है, तब कहीं न कहीं आद्युदात्त पद होना चाहिए। 'उत शूद्र उतार्ये' यह एक ही मन्त्र है, जहाँ वैश्यवाची आद्युदात्त है।

वस्तुतः सायण के पदपाठ की प्रामाणिकता तदनुरूप अर्थ करने पर ही हो सकती थी। अर्थ न किए जाने के कारण वह ग्राह्य नहीं है। हमारे द्वारा किया पदपाठ-पदच्छेद व्याकरण से सुसंगत तथा मन्त्र के अर्थ को युक्तिसंगत बनाने के कारण पूर्णतः उचित मानना चाहिए। इससे शूद्र को आर्य से पृथक् प्रतिपादित करने वालों के मत का निरास हो जाता है।

मोनियर विलियम्स तथा वैदिक इण्डैक्स के रचयिता मैक्डानल एवं कीथ आदि के द्वारा शूद्र को अनार्य मानना पूर्णतः निराधार है। साथ ही **'विजानीह्यार्यान् ये च दस्यवः'** ऋ. १.५१.८ भी मनुष्य के केवल आर्य और दस्यु ये दो ही विभाग करता है। मैक्डानल आदि पाश्चात्य तथा तदनुगामी वेद के अध्येत्ताओं के अभिमत-शूद्र आर्य पद के अन्तर्गत न होकर अनार्य हैं। **वेद के किसी भी मन्त्र से प्रमाणित तो क्या ध्वनित भी नहीं होता! कि शूद्र आर्येतर अथवा अनार्य हैं। ये चातुर्वर्ण्यान्तर्गत आर्य पद वाच्य ही हैं।**

- डॉ. वेदपाल

मैं अपनी सन्तान को देना....

- डॉ. रामवीर

मैं अपनी सन्तान को देना
चाहता हूं वे सारे सद्गुण,
जो मुझको पुरखों से मिले हैं
कोई परिश्रम बिना किए कुछ।

गुण अवगुण दोनों ही मानव
सहज विरासत में हैं पाते,
बुद्धिमान् अवगुण को त्यज कर
केवल गुण आगे ले जाते।

प्रभु ने की है ऐसी व्यवस्था
भेजता है वह दे कर बस्ता,
जो बस्ते को नहीं खोलता
स्वाभाविक अनपढ़ रह जाता।

जिस कुल में जन्मे हो उसकी
अच्छी बातों को अपनाना,
सन्तति का कर्तव्य कहा है
निजकुल का सम्मान बढ़ाना।

अगर किसी कारण से सम्भव
नहीं है कुल की कीर्ति बढ़ाना,
तो कम से कम इतना तो हो
पूर्वार्जित को नहीं घटाना।

'पूत सुपूत तो क्या धनसंचय
पूत कुपूत तो क्या धनसंचय'
लोकोक्ति का मर्म समझ कर
करना स्वकर्तव्य का निश्चय।

यूं तो जीवन भर करता है
मानव तरह तरह का संचय,
किन्तु अन्ततः उसके द्वारा
किए कर्म ही उसका परिचय।

८६, सै.४६, फरीदाबाद (हरि.)
चल.- ९९११२६८१८६

आर्यसमाज के सैद्धान्तिक साहित्य तथा ऐतिहासिक घटनाओं की खोज का प्रेरक इतिहास-१

प्रो. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

कभी कुछ स्वाध्यायशील उत्साही युवकों की प्रेरणा से मैंने परोपकारी में 'खोज की कहानियाँ' लेखमाला देने का मन बनाया। घोषणा भी कर दी गई। पाठक उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा करने लगे, परन्तु किन्हीं व्यस्तताओं से यह लेखमाला न दी जा सकी। अब महर्षि की दूसरी शताब्दी पर इसे देने का निश्चय किया। भयङ्कर गर्मी तथा लू के कारण गत मास इसे आरम्भ न किया जा सका।

मैं इस लेखमाला की महत्ता व मौलिकता के विषय में कुछ विशेष नहीं कह सकता तथापि इतना तो लिखने की धर्मप्रेमी अनुमति दें कि यह लेखमाला अनूठी, प्रेरक, रोचक व ठोस होगी।

मौरवी महाराजा के लाहौर आगमन की प्रेरक घटना- श्री लक्ष्मण जी आर्योपदेशक ने कादियानी मिर्ज़ाइयों द्वारा महर्षि की निन्दा में लिखी गई एक विषैली तथ्यहीन पुस्तक का प्रतिवाद करते हुए सन् १९२८ में 'निष्कलङ्क दयानन्द' नाम की एक पठनीय प्रेरणाप्रद पुस्तक लिखकर प्रकाशित करवाई थी। इसमें महर्षि के बलिदान से लेकर सन् १९२७ तक विरोधियों द्वारा महर्षि की निन्दा में छपी सब पोथियों का युक्तियुक्त सप्रमाण उत्तर दिया गया था।

मैंने दसवीं कक्षा की परीक्षा देकर इसे सुरुचि से पढ़ा व पचाया। इसमें सन्त लक्ष्मण आर्य ने कभी लाहौर में मौरवी नरेश के आगमन की एक महत्त्वपूर्ण, अत्यन्त प्रेरक घटना दी थी। लक्ष्मण जी ने घटना तो अत्युत्तम व प्रेरक दी, परन्तु अपनी जानकारी के स्रोत, किसी पुस्तक पत्रिका का कोई प्रमाण न दिया। यह ठीक है कि मैं तब एक अनुभवहीन कुमार था, परन्तु प्रामाणिक खोज की मेरी प्रवृत्ति को मेरे बड़े, कृपालु, विद्वान् व सब संगी साथी तथा गुरुजन जानते थे।

मैंने सन् १९४८ से लेकर ५०-५५ वर्ष तक देशभर में भ्रमण करते हुए नगरों में, ग्रामों में और कस्बों में छोटे-बड़े पुस्तकालयों में पुरानी पत्रिकाओं को खंगाला। एक-एक पृष्ठ पढ़कर देखा। लाहौर में मौरवी नरेश वाघ जी के आगमन की घटना कहीं न मिली। गुरुकुल होशंगाबाद ने मुझे अपने उत्सव पर आमन्त्रित किया। वहाँ पहुँचते ही ब्र. नन्दकिशोर जी (स्वामी सर्वानन्द जी के हनुमान) ने मुझे मिलते ही कहा, "यहाँ के पुस्तकालय से कुछ सामग्री मिली?" मैंने कहा, "कुछ नहीं मिला।" फिर पूछा, "क्या मेरा पुस्तकालय भी देखा?" मैंने कहा, "यहाँ आपके पुस्तकालय की तो मुझे जानकारी ही नहीं।" तब आप झट से भागकर अपने पुस्तकालय से सन् १९१०-११ की 'भारत सुदशा प्रवर्तक' की एक फाइल ले आये। उसे पाकर मैं गद्‌गद हो गया। उसमें वाघजी महाराज मौरवी नरेश के लाहौर आगमन पर सनातन धर्म सभा के एक शिष्टमण्डल द्वारा वाघजी से धर्म का नाश करने वाले स्वामी दयानन्द की निन्दा में वक्तव्य देने की विनती की गई। वाघजी ने कहा, "कौनसे स्वामी दयानन्द की निन्दा में कुछ कहूँ? मैं तो एक ही स्वामी दयानन्द को जानता हूँ जो हमारे मौरवी राज्य में जन्मा था। यदि वह न होता तो आज सब हिन्दू विधर्मी बन गये होते। उसने तो हमें बचा लिया।"

वाघ जी के मुख से ये शब्द सुनकर पौराणिकों के होश उड़ गये। 'भारत सुदशा प्रवर्तक' से यह सारी घटना मैंने तब से लेकर अब तक कई लेखों तथा पुस्तकों में छपवा कर प्रचारित कर दी है। इस घटना का ऋषि जीवन तथा आर्यसमाज के इतिहास में क्या महत्त्व है? यह बताने की आवश्यकता नहीं। निर्विवाद रूप से यह

मेरे द्वारा ऋषि जीवन की, इतिहास की एक अनूठी खोज है। एक-एक ऋषि भक्त इस घटना पर अभिमान कर सकता है।

स्मरण रहे कि वाघ जी महाराज ने राजकुमार के रूप में राजकोट में ऋषि जी के दर्शन किये थे और फिर मुम्बई में ऋषि जी की अन्तिम यात्रा के समय उनके एक व्याख्यान के लिए आयोजित सभा की अध्यक्षता की थी।

मौलाना अब्दुल अज़ीज़ की शुद्धि- आर्यसमाजी नेता राय ठाकुरदत्त धवन के परिवार का एक सुयोगय व्यक्ति मुसलमान हो गया। अब्दुल अज़ीज़ नाम से उसने किसी भी भारतीय को प्राप्त हो सकने वाला सबसे ऊंचा सरकारी पद प्राप्त कर लिया। वह अरबी भाषा की बहुत उच्च परीक्षायें पास था। महर्षि के जीवन काल में ही उसने पं. लेखराम जी को सुना व पढ़ा। पण्डित जी के लेखों व वाणी से वह अत्यन्त प्रभावित हुआ। महर्षि के जीवनकाल में ही उसने शुद्ध होने का निश्चय कर लिया।

पं. लेखराम जी ने उन्हें अजमेर में परोपकारिणी सभा के उत्सव पर शुद्ध करने का कार्यक्रम बना लिया।

ऋषि जीवन पर लिखने वाले लेखक देहरादून के श्री मुहम्मद उमर को ऋषि द्वारा शुद्ध करने की घटना का ही उल्लेख करते हैं। मौलाना अब्दुल अज़ीज़ की शुद्धि भी कोई छोटी घटना नहीं थी। महर्षि जी के बलिदान के पश्चात् सन् १८८४ के उत्सव पर उन्हें सोत्साह शुद्ध कर लिया गया। हरजसराय नाम उनका रखा गया। परोपकारिणी सभा के इतिहास में इस शुद्धि का किसी ने उल्लेख ही नहीं किया है।

मैंने नये-नये प्रमाण खोज करके महात्मा हंसराज ग्रन्थावली में कुल्लियाते आर्य मुसाफिर, अजमेर से छपने वाली पत्रिका के खोज-खोज कर प्रमाण देकर इस शुद्धि की घटना को मुखरित किया है। इस खोज में मैंने चालीस वर्ष तक भागदौड़ की। मेरे श्रम तथा लगन का कोई मूल्याङ्कन तो करे। अपने आपको आर्यसमाज का इतिहासकार मानने व प्रचारित करने वालों ने आज तक तो राजस्थान के इतिहास, परोपकारिणी सभा के इतिहास तथा सात खण्डों में छपे आर्यसमाज के इतिहास में यह घटना कहीं नहीं दी। क्या अब आशा की जावे कि मेरे साहित्य का लाभ लेकर आर्यसमाज इसे अवश्य मुखरित करेगा? आर्य परिवार में जन्मे विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक सतीश धवन जी को भी परोपकारी में छपे मेरे लेखों से श्री हरजस राय की गौरवपूर्ण शुद्धि की जानकारी मिली। क्या यह कोई छोटी घटना है? इन पंक्तियों के लेखक ने पं. लेखराम का नाम लेकर न जाने कहाँ-कहाँ जाकर इस घटना की खोज करके प्रमाण संग्रहीत किये। अब कोई तो मेरी खोज का मूल्याङ्कन करेगा।

माता गंगा बाई आदि- आर्यसमाज में नये पुराने वक्ता व लेखक आर्यसमाज द्वारा स्त्री जाति के उद्धार, सुधार की दुहाई तो बहुत देते रहते हैं, परन्तु आर्यसमाज के इतिहास में आर्यसमाज की, देश, धर्म व समाज की सेवा का कीर्तिमान बनाने वाली अग्रणी, इतिहास रचने वाली पाँच सात स्त्रियों की समाज सेवा व देन पर कुछ भी सामग्री नहीं मिलती। मुझे वह न्यूनता बहुत खलती रही। मैं कुमार अवस्था में ही ऐसी कर्मठ धर्मनिष्ठ देवियों की समाज सेवा को देन की घटनाओं की खोज में देश भर में भ्रमण करने लग गया।

कोई दो-तीन वर्ष पूर्व श्री अजय आर्य ने पं. इन्द्र जी लिखित आर्यसमाज के इतिहास में ऐसी छूट गई घटनाओं व सामग्री को जोड़ने का कार्य सौंपा। मैंने इन्द्र जी लिखित इतिहास के दो भागों में खोज-खोज कर नई सामग्री सप्रमाण जोड़कर आर्यसमाज की शोभा शान को चार चाँद लगा दिये तथा इतिहास का एक भाग जो सर्वथा नया तैयार करके दिया उसमें इतिहास को नई दिशा देने वाली कई समर्पित तपस्विनी देवियों द्वारा समाज में नवजीवन का संचार करके आर्यजाति का स्वर्णिम इतिहास रच दिया। इस नई खोजपूर्ण सामग्री की एक-एक पंक्ति पढ़कर प्रबुद्ध पाठक इतराते हैं।

कोई दूसरी घटना नहीं- ऐसे एक-दो अथवा

दो-चार आर्य महिलाओं की सेवा व तप त्याग पर ही मैंने नहीं लिखा। ऐसी निडर बलिदानी आर्य ललनाओं द्वारा जन-जन को अनुप्राणित और झकझोरने वाली नई-नई घटनायें सप्रमाण दी हैं। यथा देश की एकता व अखण्डता के लिये हैदराबाद में माता गोदावरी अपने प्राणवीर बलिदानी पति के साथ देशद्रोहियों से जूझते हुए जीवित जलाई गई। है कोई स्वराज्य संग्राम में ऐसी कोई दूसरी घटना?

जब हैदराबाद के मतान्ध इस्लामी राज्य श्यामभाई, पं. नरेन्द्र जी आदि क्रान्तिकारी आर्यनेताओं को सरकार की दमन दलन की नीति के भय से (हृदय में श्रद्धा रखते हुए भी) कोई हिन्दू घर में न तो ठहरता था और न ही भोजन करवाता था। उस कालखण्ड में धाराशिव मराठवाड़ा की निडर बलिदानी माता गंगाबाई निर्भय होकर श्यामभाई, पं. नरेन्द्र जी आदि आर्य क्रान्तिकारियों को निडरतापूर्वक घर में आमन्त्रित करके सेवा सत्कार किया करती थी।

मैंने भी उस देशभक्त निडर माता के कई बार दर्शन किये थे। श्री पं. नरेन्द्र जी के संग उस देशभक्त माता के हाथ का भोजन करने का मुझे भी सौभाग्य प्राप्त है। मैंने श्री पं. नरेन्द्र जी आदि प्राणवीरों के मुख से उस वीर माता की कई प्रेरक घटनायें सुनीं थीं। उस माता के निधन के लम्बे समय पश्चात् मैंने आर्यसमाज के इतिहास में इस निडर माता का प्रामाणिक इतिहास जोड़ दिया है।

एक समय था जब महर्षि के बलिदान के पश्चात् आर्यों ने डी.ए.वी. के नाम से देश का पहला सबसे बड़ा शिक्षा आन्दोलन लाहौर से आठ नवम्बर सन् १८८३ को आरम्भ किया था तो उसे जहाँ पं. गुरुदत्त जी, लाला लाजपतराय ने सम्बोधित किया। तब माई भगवती नाम की स्त्री ने भी उस सभा को सम्बोधित किया था। जनजागरण के इस आन्दोलन को सम्बोधित करने का गौरव तो इस माता को प्राप्त हुआ ही।

यह नहीं भूलना चाहिए कि माई भगवती एक विधवा स्त्री थी। विधवा का घर में और समाज में तिरस्कार जी भर कर होता था। माई भगवती ने उस ऐतिहासिक सभा में बोलकर एक नया इतिहास रचा था। देश के जनजागरण के पहले शिक्षा आन्दोलन को सम्बोधित करने वाली इस देवी का डी.ए.वी. में कौन नाम लेता है?

मैंने ही इतिहास लेखकों के इस घातक मौन को महात्मा हंसराज ग्रन्थावली में तोड़कर नया इतिहास रचा। आश्चर्य की बात तो यह है कि महात्मा हंसराज जी के भी किसी लेख में माता भगवती का नाम नहीं मिलेगा।

कई अग्रणी देवियों को इतिहास में स्थान मिला जब मैंने इतिहास की घटनाओं की प्रामाणिक खोज के लिए देशभर में यात्रायें करके लुप्त हो रहे स्रोत खोज लिए तो प्रत्येक क्षेत्र में जनजागरण के लिए वीर माताओं की देन और उनके द्वारा रचे गये इतिहास को मैं बहुत कुछ मुखरित कर चुका हूँ। समाज सुधार, दलितोद्धार तथा अस्पृश्यता उन्मूलन का आर्यों ने आन्दोलन छेड़ा तो कई नगरों व ग्रामों में आर्यों का प्रचण्ड बहिष्कार किया गया। आर्यपुरुषों ने अत्याचार सहे सो सहे आर्य देवियों ने भी तब बहिष्कार की भट्टी में कूदकर युग के प्रवाह को बदल कर दिखा दिया। पहली बार ही ऐसी साहसी आर्यदेवियों के शौर्य व देन की इतिहास में चर्चा होने से आर्यजन में नया जोश व उत्साह पैदा हुआ। श्री डॉ. वेदपाल जी की दादी ने पोपों द्वारा डॉ. वेदपाल जी के पिता श्री रघुवीरसिंह के बहिष्कार के समय पोपों की विशाल सेना के छक्के छुड़ा दिये। अभी इन्हीं दिनों विदेश से एक आर्यविद्वान् ने इस प्रचण्ड बहिष्कार के समय महाशय रघुवीरसिंह जी तथा डॉ. वेदपाल जी की दादी की उस आन्दोलन के समय धर्मभाव व दृढ़ता की पूरी जानकारी प्राप्त की।

लुप्त हो चुका इतिहास मुखरित हो गया- स्वामी सत्यप्रकाश जी की संन्यास दीक्षा पर वैज्ञानिकों ने उन पर एक पठनीय ग्रन्थ तैयार किया। तब उसमें मेरा एक खोजपूर्ण लेख छपा था। मैंने उस लेख से अलग एक महत्त्वपूर्ण घटना एक बॉक्स बनाकर देने की वैज्ञानिकों

से मांग की। वह घटना स्वामी जी के बाल्यकाल की थी। उसे स्वामी जी ने सुरुचि से पढ़ा। वह सत्य ही थी। मैंने इसे कहाँ से खोज लिया? स्वामी जी मुझसे पूछते हुए बहुत सुकचाते थे।

एक दिन उस ग्रन्थ की स्वामी जी से चर्चा छिड़ गई तो मैंने उपाध्याय जी द्वारा महाराष्ट्र हैदराबाद वालों की माँग पर अपनी उर्दू पुस्तक 'बारी ताला' में यह घटना कभी दी थी। सत्यप्रकाश जी को बाल्यकाल में पतंग उड़ाने की बड़ी सनक थी। आप अपने पिता जी की गूंद की शीशी लेकर पतंग बनाकर उड़ाते रहते। एक बार गूंद की शीशी खाली पाकर आपने अपनी दादी से पिताजी की शिकायत करते हुए कहा, ''पिताजी सारी गूंद अपने लिफाफों में लेख भेज-भेज कर विनष्ट कर देते हैं। मैं पतंग के लिये गूंद कहाँ से लूँ?'' ठीक ऐसे ही मनुष्य परमात्मा की कुछ कृतियों को व्यर्थ मानकर अपने लिये ही सर्वभोग चाहता है।

इस सुन्दर मौलिक दार्शनिक पुस्तक से मैंने कई अत्यन्त विशेष प्रेरक घटनायें खोजकर मुखरित कर दीं। हैदराबाद वालों ने उस पुस्तक का न तो लाभ लिया और न मूल्याङ्कन किया।

कोलकाता के सीनेट हाल में ऋषि की दिग्विजय और उपाध्याय जी- २२ जनवरी सन् १८८१ में एक सेठ नारायणदास ने दक्षिणा देकर सैंकड़ों विद्वानों को ऋषि की निन्दा के लिये इकट्ठा किया। ऋषि जी को अपना पक्ष रखने के लिए बुलाने का पौराणिकों को साहस ही न हो सका। जब पौराणिकों की यह यह ऐतिहासिक सभा हो रही थी तब पण्डित गंगाप्रसाद उपाध्याय अपनी माता की कोख में पल रहे थे।

इसके ठीक पचास वर्ष (आधी शताब्दी होने पर) उसी सीनेट हॉल में देशभर के मूर्धन्य विद्वान्, साहित्यकार व नेता उसी सीनेट हॉल में फिर स्वेच्छा से उत्साह से एकत्र हुए। किसलिए इकट्ठे हुए? पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय के श्रेष्ठ ग्रन्थ 'आस्तिकवाद' पर सम्मानित व पुरुस्कृत करने के लिए।

आस्तिकवाद में उन सभी मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों की श्रेष्ठता व सचाई की पुष्टि की गई जिनका सन् १८८१ में विरोध किया गया। यह कितने आश्चर्य की बात है कि तब पं. गंगाप्रसाद माँ की कोख में था और अब वह पचास वर्ष का था। तब भी ऋषि जी को बुलाने की विरोधियों को हिम्मत ही न हुई। तब भी ऋषि विजयी रहे और अब १९३१ में तो यह स्पष्ट ही ऋषि की विजय थी।

इस विषय में मेरा लेख पढ़कर स्वामी सत्यप्रकाश जी अबोहर पधारे। मुझसे चर्चा छेड़कर पूछा, ''राजेन्द्र आपको यह कैसे सूझा कि १८८१ ई. में गंगाप्रसाद माँ की कोख में पल रहे थे और अब सम्मानित किये गये? तुम्हारी ऊहा पर मैं अपने मानोभाव क्या व्यक्त करूँ?''

मैं इस पर यही कह सकता हूँ कि यह मेरे चिन्तन व प्रभु कृपा का ही फल मानना चाहिए। स्वामी जी को मेरी ऊहा का ध्यान आया। यह मेरा सौभाग्य।

(क्रमशः)

सूचना

आर्य समाज एवं अन्य आर्य संस्थाएं अपने निर्वाचन, वार्षिकोत्सव और योग शिविर आदि आयोजन के संक्षिप्त समाचार परोपकारी में प्रकाशनार्थ भिजवा सकते हैं।

यज्ञशाला का लोकार्पण

नगर आर्य समाज अजमेर की नवनिर्मित यज्ञशाला का लोकार्पण २७ जुलाई को स्वामी ओमानंद सरस्वती के सानिध्य में होगा। इस मौके पर वैदिक विद्वानों के प्रवचन भी होंगे।

रजत जयंती सम्मेलन

जोधपुर में आर्य समाज पानिनी नगर की रजत जयंती पर तीन दिवसीय विशाल आर्य सम्मेलन का आयोजन २ से ४ अगस्त तक होगा। इस मौके पर ४ अगस्त को २०० कुण्डीय महायज्ञ होगा।

विद्वानों के विचारार्थ

क्या यज्ञों में वेदमन्त्रों का उच्चारण स्वररहित करना सम्भव है?

[स्वामी चिदानन्द सरस्वती (आचार्य उदयन मीमांसक),

वैदिक परम्परा एवं संस्कृति में यज्ञों का एक विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें यज्ञ प्राणस्वरूप हैं, यह निश्चितरूप से कह सकते हैं। इन यज्ञों में वेदमन्त्र विनियुक्त होते हैं और वे मन्त्र वेदों में उदात्तादि स्वरों के साथ ही उपदिष्ट हैं, स्वरहीन नहीं। स्वररहित मन्त्र उपदिष्ट ही नहीं हैं, तो उनका उच्चारण भी असम्भव है। अतः स्वरयुक्त मन्त्रों का ही उच्चारण करने का विधान अनेकत्र उपलब्ध होता है। तद्यथा आर्विज्यं करिष्यन् वाचि स्वरमिच्छेत। तया वाचा स्वरसम्पन्नया आर्विज्यं कुर्यात्। तस्माद्यज्ञे स्वरवन्तं दिदृक्षन्त एव (शत. ब्रा. १४.४.१.२७; बृ.उप. १.३.२५)। ऋत्विक्कर्म करने की इच्छा वाला व्यक्ति वाणी में अर्थात् मन्त्रोच्चारण में उदात्तादि स्वरों को भी बोलने की इच्छा करें, प्रयत्न करें। उस स्वरयुक्त मन्त्रों से ही ऋत्विक्कर्म (यज्ञ) को सम्पन्न करें। इसलिए यज्ञ में उस सरवर मधुर उच्चारण (मन्त्रपाठ) को सब लोग देखना चाहते हैं, सुनना चाहते हैं। यजमान लोग स्वरसहित बोलने वाले ऋत्विजों को ढूंढते ही हैं। ब्राह्मणकार महर्षि याज्ञवल्क्य के इस वचन से करवदरवत् पूर्णतया स्पष्ट है कि यज्ञों में मन्त्रों का उच्चारण स्वर के साथ ही करना चाहिए। इसीलिए अनेकों आचार्यों ने भी स्पष्टतया विधान किया है और संकेत भी किया है। जैसे कि यो वा इमां पदशः स्वरशोऽक्षरशो वाचं विदधाति स आर्विजीनो भवति (महाभाष्य, पस्प.)। दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा, मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह। स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति, यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् (म. भा., पस्प.; तुलना नारदीयशिक्षा -१.१.५)। प्रहीणः स्वरवर्णाभ्यां यो वै मन्त्रः प्रयुज्यते। यज्ञेषु यजमानस्य रुशत्यायुः प्रजां पशून् (ना. शिक्षा-१.१.६) इत्यादि।

उद्धृत इन वचनों से स्पष्ट है कि यज्ञों में मन्त्रों का उच्चारण स्वरयुक्त ही करना चाहिए, अन्यथा यजमानादि का अनर्थ होगा। इस अनर्थता का स्पष्टीकरण आगे करूँगा। उदात्तादि स्वरों के उच्चारण के प्रकार व विधि को न जानने वाले पण्डित जन अपनी असमर्थता को छिपाने के लिए एक ब्रह्मास्त्र के रूप में प्रमाण प्रस्तुत करते हैं-"यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु (अष्टाध्यायी१.२.३४)। इस सूत्र के व्याख्यान में अधिकांश आचार्यों ने एकश्रुति का अर्थ उदात्तादि त्रैस्वर्य रहित उच्चारण किया है।[१] जो कि भ्रामक, अशास्त्रीय एवं अज्ञानपूर्ण है। इस भ्रामक अर्थ का शिकार आज तक के सभी विद्वान् होते आ रहें हैं। किसी ने भी यह विचारने का परिश्रम नहीं किया कि यदि इस सूत्र का अर्थ "यज्ञों में मन्त्रों का उच्चारण एकश्रुति अर्थात् उदात्तादि स्वर से रहित करना चाहिए, जपादि को छोड़ कर" यही होता तो लेख के आरम्भ में उद्धृत शतपथ[२] आदि के वचनों से विरुद्ध नहीं होगा? अवश्य होगा। विरुद्धदशा में दोनों विधानों में से किसी एक को स्वीकार्य मान कर किसी को त्याज्य मानना होगा। जो कि ऋषिकृतग्रन्थों के प्रति अन्याय है, अनुचित है। साथ में यह भी विचार करना चाहिए कि महर्षि पाणिनि कोई कल्पक आचार्य नहीं है, जिससे कि उनके वचन (सूत्र) को कर्मकाण्डविषयक विधायक सूत्र माना जाय। वे तो केवल प्रयोग में आने वाले साधु शब्दों का एवं व्यवहार में होने वाली क्रियाओं का अन्वाख्यानमात्र करते हैं। पुनरपि लोगों ने इसे विधिवाक्य समझा है। इससे अधिक विडम्बना का विषय यह है कि श्रौतसूत्रों के कुछ व्याख्याकार एवं कुछ मीमांसकों[३] ने भी पाणिनिसूत्र को विधिवाक्य के रूप में प्रस्तुत किया है।

अस्तु, हम मूल बिन्दु पर विचारते हैं। पहले हमें

यह विचारना होगा या जानना होगा कि क्या कभी किसी लौकिक या वैदिक शब्द का उदात्तादि स्वरों से रहित (तथाकथित एकश्रुति से) उच्चारण करना सम्भव हो सकता है? आईये, पहले इसका समाधान ढूंढ़ते हैं। महर्षि पाणिनि अचों (स्वरों) का गुणधर्म बतलाते हुए लिखते हैं एवं व्याख्याने वृत्तिकाराः पठन्ति अष्टादशप्रभेदमवर्णकुलमिति। तत् कथमुक्तम्?

हरवदीर्घप्लुतत्त्वाच्च त्रैस्वर्योपनयेन च।

आनुनासिक्यभेदाच्च संख्यातोऽष्टादशात्मकः॥ इति (पाणिनीया शिक्षा ६.१,२) स्पष्टता के लिए इन वचनों के भाव को हम एक सारणि के रूप में दिखाते हैं-

	उदात्त		अनुदात्त		स्वरित	
	निरनु.	सानु.	निरनु.	सानु.	निरनु.	सानु.
ह्रस्व	अ	अँ	अ॒	अँ॒	अ॑	अँ॑
दीर्घ	आ	आँ	आ॒	आँ॒	आ॑	आँ॑
प्लुत	अ३	अँ३	अ॒३	अ॒॑३	अ॑३	अँ॑३

अठारह प्रकार के इन अवर्णों में से प्रत्येक अवर्ण में ह्रस्वादि में से एक काल का गुण, उदात्तादि में से एक स्वर का गुण (धर्म) और सानुनासिक एवं निरनुनासिकों में से कोई एक गुण अवश्य रहेगा अर्थात् प्रत्येक अवर्ण में तीन गुण अवश्य रहेंगे। इसी प्रकार इवर्ण आदि हैं- एवमिवर्णादयः। लृवर्णस्य दीर्घा न सन्ति। तं द्वादशप्रभेदमाचक्षते। सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वा न सन्ति। तान्यापि द्वादशप्रभेदानि (शिक्षा-६.३,४,५,७,८)। जब उदात्तादि स्वरों से रहित अचों का अस्तित्व ही नहीं है तो उनका उच्चारण कैसे सम्भव हो सकता है? विज्ञ विचारें। जब हम किसी शब्द या वाक्य का उच्चारण करते हैं, तो उसमें उदात्त, अनुदात्त एवं स्वरित धर्मों से युक्त अचों का ही उच्चारण कर रहें होते हैं, चाहे वे शब्दादि वैदिक हों या लौकिक। जिस प्रकार ह्रस्वादि कालधर्म से रहित अचों का उच्चारण असम्भव है, ठीक उसी प्रकार उदात्तादि स्वरधर्म से रहित केवल अचों का उच्चारण सर्वथा असम्भव है। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि व्यक्ति मन्त्रादि के उच्चारण में विना विधि-विधान के, स्वाभाविकतया या प्रवाहवश होकर स्वरों का उच्चारण करता हुआ उसे स्वर-रहित (एकश्रुति) समझ रहा है। यह अज्ञानता का ही द्योतक है।

उक्त विवेचन से यहाँ पाठकों को यह भी स्पष्ट हो गया होगा कि ३. एकश्रुतेर्व्याकरणस्मृतौ विहितत्वात् 'एकश्रुति' का अर्थ 'उदात्तादि-स्वररहित उच्चारण' करना क्यों अनुचित व भाम्रक है? क्यों अव्यवहारिक है? और क्यों अशास्त्रीय है? पुनः इसका शास्त्रीय यथार्थ अर्थ क्या है? एकश्रुति के वास्तविक स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए उसके शास्त्रीय पक्ष को विस्तृतरूप से मैंने अपने एक पूर्व लेख "उदात्तादि स्वरों का स्वभाव और उच्चारण का प्रकार" में लिखा था। जो कि मेरी नवीनकृति "शास्त्रतत्त्वार्थमीमांसा" में (पृष्ठ ३०७-३१५) एवं वेदवाणी (दिसम्बर- जनवरी २०२०-२१), आर्षज्योति (मार्च २०२१) पत्रिकाओं में प्रकाशित है। पुनरपि यहाँ संकेततः समाधान प्रस्तुत कर आगे बढ़ता हूँ-

एकश्रुति शब्द में विद्यमान 'एक' शब्द का अर्थ प्रधान होता है।[४] तीनों स्वरों में प्रधान स्वर उदात्त है। अतः एकश्रुति का अर्थ 'उदात्तश्रुति' है। एकश्रुति के अर्थ में 'उदात्तश्रुति' शब्द का प्रयोग अनेकों आचार्यों ने किया भी है। यथा-१. स्वरितादनुदात्तानां परेषां प्रचयः[५] स्वरः। उदात्तश्रुतितां यान्त्येकं वा द्वे वा बहूनि वा।। (ऋक्प्रातिशाख्य ३.१९)। २. स्वरितात्संहितायामनुदात्तानां प्रचय उदात्तश्रुतिः (तैत्तिरीयप्राति. २१.१०)। ३. स्वरितादनुदात्तस्य उदात्तश्रुतिः (अथर्वप्रातिशाख्य ३.७१)। ४. स्वरितात् परमनुदात्तमुदात्तमयम् (वाजसनेयप्राति. ४.१४१)। ५. तस्मादुच्चश्रुतीनि (ऋक्तन्त्र ६१)। एकश्रुति का उच्चारण उदात्तध्वनि में होता है, यह इन वचनों से सिद्ध है। इतना ही नहीं महाभाष्यकार के वचन से भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि

एकश्रुति विस्वर नहीं, अपितु एक स्वरविशेष है[६] - सप्त स्वरा भवन्ति उदात्त:, उदात्ततर:, अनुदात्त:, अनुदात्ततर:, स्वरित:, स्वरिते य उदात्त: सोऽन्येन विशिष्ट:, एकश्रुति: सप्तम: (महाभाष्य १.२.३३)। भाष्यकार के इस वचन से यह सिद्ध हो जाता है कि एकश्रुति एक स्वतन्त्र स्वरविशेष है। जो कि उदात्तध्वनि के समान ध्वनिवाला है (उदात्त इव श्रुति: ध्वनि: यस्य स: उदात्तश्रुतिरेकश्रुति:)। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि स्वतन्त्र उदात्त, उदात्ततर, स्वरित के अन्दर विद्यमान उदात्त ध्वनि एवं एकश्रुति (उदात्तश्रुति) ये चारों ही स्वर उच्चध्वनि वाले होते हुए भी परस्पर निरपेक्ष भिन्न-भिन्न ध्वनियाँ हैं। आज उदात्त और एकश्रुति के भेद का ग्रहण या भेदश: उच्चारण नहीं हो पा रहा है, यह एक अलग विषय है। जब एकश्रुति उदात्तध्वनि के समान उच्चरित होता है और यह एक स्वतन्त्र स्वरविशेष है, तो इसे उदात्तादिस्वररहित (स्वरहीन) कहना अल्पज्ञता का प्रतीक नहीं है तो और क्या है?

अभी तक के प्रतिपादन से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मन्त्र स्वर-सहित ही बोलना चाहिए; स्वररहित बोलना असम्भव है। यथेष्ट अर्थात् बेढंग स्वरों को बोलने की अपेक्षा शास्त्रीय विधिविधानों के साथ सस्वर मन्त्रों का उच्चारण करना श्रेष्ठ है, लाभप्रद है। अन्यथा अनिष्टकर है। इसके लिए एक उदाहरण प्रस्तुत करता हूँ। सभी विद्वान् निर्विवादरूप से स्वीकार करते हैं कि- स्वरभेद से अर्थभेद होता है और अर्थग्रहण में स्वर का एक विशेष महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है। यह मत भी इस उदाहरण से सिद्ध हो जाता है। शान्तिपाठ के मन्त्रान्त में हम पढ़ते हैं ''सा मा शान्तिरेधि''। यहाँ 'मा' अनुदात्त है, जिसका अर्थ होता है 'मुझे'।[७]'' अर्थात् 'सा शान्ति: मा एधि'= वह द्यौ शान्ति, अन्तरिक्ष शान्ति, पृथिवी शान्ति आदि मुझे प्राप्त हों। यदि यहाँ कोई यथेष्ट से 'मा' को उदात्त के रूप में उच्चारण करता है तो, उसका अर्थ 'निषेध' होता है।[८] तद्यथा मा पिब, मा गच्छ आदि। अर्थात् वह धी आदि की शान्तियाँ न हों। कितना विपरित अर्थ प्रकट हो रहा है।[९] इसीलिए शास्त्रकारों ने गुरु के समक्ष वेदादि शास्त्रों को पढ़े हुए द्विज को ही यज्ञ करने या कराने का अधिकार दिया है। महर्षि दयानन्द भी इससे असहमत नहीं है। महर्षि ने यह कहीं भी नहीं लिखा है कि बिना पढ़े, बिना सीखे स्वरहीन मन्त्रों से यज्ञ करो। इसके विपरीत अनेकों स्थानों पर स्वर का समर्थन किया है। अब यहाँ कोई यह तर्क न करें कि हम परमात्मा के अज्ञानी बालक हैं। हम कैसे भी बोलें, हमारे हृदय की पवित्र भावनाओं को तो ईश्वर जानता है। इसलिए स्वरदोष से जो विपरीत अर्थ निकल रहा है, वह उसे क्यों देगा? वह तो हमारी भावनाओं, प्रार्थनाओं के अनुकूल ही फल देगा। यह तर्क तो केवल अपनी असमर्थता व अज्ञान को छिपाने के लिए हो सकता है, पर यथार्थ नहीं है। कोई जीवनभर बालक नहीं होता। जब जागे तभी सवेरा होता है। यदि प्रार्थनादि के लिए स्वर की आवश्यकता न होती, तो ईश्वर स्वर के साथ वेदोपदेश क्यों करता? लोक व्यवहार में भी 'यह पण्डित है' यह वाक्य पण्डित एवं मूर्ख अर्थ में भी प्रयोग देखा जाता है। वाक्य वही है, केवल ध्वनि भिन्न-भिन्न होती है। अब यथार्थ पण्डित के सामने मूर्खार्थक ध्वनि में बोलें तो अनर्थ हो जायेगा। वक्ता को स्पष्टीकरण देना होगा कि नहीं-नहीं, मेरा ऐसा कोई दुरभिप्राय हृदय में नहीं था, शब्द उस प्रकार से निकल गये हैं, इत्यादि। पर इसप्रकार स्पष्टीकरण की परिस्थिति प्रार्थना में नहीं हो सकती है। अत एव परमात्मा ने स्वर के साथ ही मन्त्रों का उपदेश किया है। स्वर को छोड़कर केवल शब्दात्मक मन्त्रों को बोलना, नहीं नहीं, उपदिष्ट स्वर से विपरीत स्वर से मन्त्रों का बोलना ईश्वर के उपदेश की अवहेलना है, लापरवाहीपन है, आलसीपन है, आज्ञा का उल्लंघन ही है। अत: यह कृत्य दण्डनीय होता है। इसलिए सभी शास्त्रकारों ने आचार्यों की सन्निधि में शिक्षित द्विज को ही वेदों को पढ़ने पढ़ाने का और यज्ञ करने कराने का अधिकार दिया है। मेरा अभिप्राय यह

नहीं है कि सब अनधिकृत हैं, अपितु सब लोग स्वरादि को सीख कर, शब्दों का भी शुद्ध-शुद्ध उच्चारण सीख कर अधिकार को प्राप्त करें। यहाँ तो केवल शास्त्र का सिद्धान्त, शास्त्र का दृष्टिकोण प्रस्तुत किया जा रहा है।

ईश्वर स्वर के साथ मन्त्रों का उपदेश किया है, इसलिए उन्हें सस्वर ही बोलना चाहिए और स्वर रहित बोलना असम्भव है, तो पाणिनि ने यज्ञों में एकश्रुति का विधान क्यों किया है? इसका समाधान लिखने से पूर्व मैं पाठकों से आग्रहपूर्वक निवेदन करता हूँ कि वे अपने मस्तिष्क से 'एकश्रुति' का अर्थ 'स्वररहित' को निकाल दें, क्योंकि वह उसका अर्थ है ही नहीं और मनमानी, बेढंग से उच्च नीच्च स्वरों को बोलना भी एकश्रुति नहीं है। यह सब प्रतिपादन किया जा चुका है। साथ में यह भी बताया गया है कि पाणिनि का सूत्र यज्ञविषयक विधिसूत्र नहीं है और न ही पाणिनि कल्पक (कल्पसूत्रकार) हैं।

''यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु'' का वास्तिविक अर्थ यह है कि 'एकश्रुति का उच्चारण केवल यज्ञकर्म में ही होगा, अन्यत्र स्वाध्याय, पठन-पाठनादि में नहीं होगा, यज्ञकर्म में भी जप, न्यूङ्ख और साम के मन्त्रों में तो कभी भी एकश्रुति नहीं होगी।' अब यज्ञकर्म में जपादि को छोड़कर अन्य सारे मन्त्रों को एकश्रुति से बोलना है या कुछ विशेष मन्त्रों को? इसका निर्णय करना पाणिनि का विषय नहीं है। यह तो कल्पसूत्रकारों का विषय है। कल्पसूत्रों में विधान किया गया है कि ता: [सामिधेन्य:] एकश्रुतिसन्ततमनुब्रूयात् (आश्वलायन श्रौतसूत्र-१.२.८)। वर्शपूर्णमासेष्टि आदि इष्टियों में सामिधेनी मन्त्रों (ऋग्वेदीय कुछ विशिष्ट मन्त्रों) से समिदाधान किया जाता है। वे ग्यारह मन्त्र होते हैं, पर उन्हें पन्द्रह मन्त्र बनाकर २१ समिधाओं का आधान किया जाता है। यह एक विशेष प्रक्रिया है, मन्त्रोच्चारण का भी एक विशेष विधान है, मन्त्रों की संख्या अधिक भी होती है। इन सब की चर्चा यहाँ करने की आवश्यकता नहीं है। इन सामिधेनी मन्त्रों को एकश्रुति से लगातार बोलने का विधान यहाँ किया गया है। सामिधेनियों के इस एकश्रुतिधर्म को अन्यत्र अतिदेश करते हुए आश्वलायन श्रौतसूत्रकार कहते हैं कि- एतेन [=धर्मेण] शस्त्रयाज्यानिगदानुवचनाभिष्टवनसंस्तवनानि (आश्व. श्री. १.२.२३)। अर्थात् शस्त्रमन्त्र, याज्यामन्त्र, निगदमन्त्र, अनुवचनमन्त्र, अभिष्टयनमन्त्र, संस्तवनमन्त्र[१०] ये सभी मन्त्र[११] भी एकश्रुति (केवल उदात्तसदृशध्यनि) से बोले जाते हैं। यहाँ यह भी विशेषतया अवधेय विषय है- इस सूत्र में 'याज्या' मन्त्र को एकश्रुति से उच्चारण करने का विधान किया है, पर इससे पूर्व पढे जाने वाले पुरोनुवाक्यामन्त्र[१२] का उल्लेख नहीं किया है। इससे ज्ञापित होता है पुरोनुवाक्यामन्त्र एकश्रुति से न बोलकर त्रैस्वर्य से बोलना चाहिए। इतना ही नहीं महर्षि पाणिनि पुरोनुवाक्यामन्त्र[१३] के टिभाग को प्लुत और उदात्त वाले 'प्रणय' (ओ3म्) का आदेश करते हैं- प्रणवष्टे: (अष्टा. ८.२.८९ : अपि च. प्र. आश्च. श्री. १.२.१०)। यदि पुरोनुवाक्या त्रम् एकश्रुति (उदात्तश्रुति) से उच्चरित होती तो उसके अवयवभूत प्रणय भी उदात्त से ही बोला जाता है, पुन: उदात्त का विधान क्यों करते? इससे भी ज्ञापित होता है कि अनुवाक्या मन्त्र त्रैश्वर्य से बोला जाता है। त्रैस्वर्य से उच्चरित होने पर उसके टिभाग में आदिष्ट प्रणय को किस स्वर से बोलें? इस आकांक्षा की पूर्ति के लिए पाणिनि आदि ने 'उदात्त' का विधान किया है। इस प्रकार त्रैश्वर्यपक्ष में ही यह विधान चरितार्थ है, अन्यथा नहीं। इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद मैं यह भी लिखने का दुस्साहस कर रहाँ हूँ कि यज्ञकर्मण्यजपन्यूयसामसु (अष्टाध्यायी १.२.३४) इस सूत्र के व्याख्यान में उदाहरण स्वरूप काशिकाकार ने 'अग्निर्मूर्धा दिव:०' त्रैस्वर्य से बोले जाले वाले इस पुरोनुवाक्या मन्त्र को एकधुति के विधायक सूत्र पर प्रस्तुत किया है। यह एक बहुत बडी भूल है।[१४] इसी भूल का अनुकरण बाद के सभी वैयाकरणों ने किया है। प्रणवष्टे: सूत्र पर भी यही मन्त्र उदाहरण के

रूप में उधृत है। जो कि वहाँ उचित ही है। 'यज्ञकर्मण्य०' सूत्र पर सामिधेनी[१५], याज्या आदि मन्त्रों का उदाहरण देना चाहिए। जिनका एकश्रुति का विधान श्रौतसूत्रों में किया गया हो। याज्यामन्त्र एकश्रुति (उदात्तश्रुति) से बोला जाता है। इसके अन्त में वषट्कार (वौषट्कार) जोड़ा जाता है। इसे भी याज्या का अवयव होने से उदात्तश्रुति प्राप्त होती है। इसे बांधने के लिए इसे उदात्ततर का विधान किया गया है- वषट्कारोऽन्त्य: सर्वत्र। उच्चैस्तरां बलीयान् याज्याया: (आध० श्रौ० १.५.५,६); उच्चैस्तरां वा वषट्कार: (अष्टा० १.२.३५)।

अब यहाँ विवेकी पुरुषों को यह समझने में अधिक कठिनाई नहीं होगी कि यदि यज्ञों में जपादियों को छोड़कर सभी मन्त्रों को एकश्रुति से बोलना कल्पसूत्रकारों को अभीष्ट होता तो पुन: सामिधेनी आदि मन्त्रों को एकश्रुति से बोलने का विधान क्यों करते? स्पष्ट है कि कुछ विशिष्ट मन्त्र ही एकश्रुति से बोले जाते हैं, सभी नहीं। एकश्रुति से अविहित मन्त्र त्रैस्वर्य से बोले जाते हैं। यदि वे मन्त्र संहिता में पठित हैं तो संहितास्वर से, यदि ब्राह्मणों में पठित हैं तो ब्राह्मणस्वर (भाषिकस्वर) से वोलना चाहिए (द्र० कात्यायनश्रौतसूत्र १.८.१६-१७)।[१६] इतना ही नहीं, मन्त्रविनियोग में कभी-कभी क्रियापदों का अध्याहार किया जाता है और कभी-कभी पूर्व में पठित मन्त्रांशों व क्रियापदों को अग्रिम मन्त्रों या पादों में जोड़ दिया जाता है, जिन्हें 'अनुषङ्ग' कहते हैं। अब अध्याहृत तथा अनुषङ्ग के शब्दों के उच्चारण में क्या कुछ विशेष व्यवस्था की गयी है, उसे दिखाते हैं- कात्यायनश्रौतसूत्र ६.४.२ की व्याख्या करते हुए कर्काचार्य लिखते हैं- ''समङ्गानि यजत्रै:'' इत्यत्र 'गच्छन्तम्' इत्यध्याहारो, नानुषङ्ग:, ''संयज्ञपतिराशिषा'' इत्यात्रापि 'गच्छताम्' इत्यध्याहार एव, नानुषङ्ग:..., अतश्चोभयत्र (अध्याहृतशब्दस्य) संहितावत् प्रयोगो न भवति। प्रायश्चित्तगतश्च विशेष: अनुषङ्गविनाशे श्रौतं प्रायश्चित्तम्, अध्याहारे त्ववैदिकत्वात् (=लौकिकत्वात्) स्मार्तम् इति (कर्क:, का० औ० ६.४.२)। इन वचनों के आधार पर विद्याधर शर्मा जी का० श्रौ० २.३.१० पर लिखते हैं- अत्र ['कर्मणे वाम्' इति] मन्त्रे साकाङ्क्षत्वात् 'आददे' इत्यध्याहर्तव्यम्। अस्य संहितावच्छ्रयोगो न भवति। अध्याहारस्य लौकिकत्वात् इति कर्क:। अब आचार्यों के इस सिद्धान्त से हम यह निश्चितरूप से ग्रहण कर सकते हैं कि यज्ञों में मन्त्रों को संहिता में यथापठित त्रैस्वर्य से वोलना चाहिए और मन्त्रगत आनुषङ्गिक शब्द वैदिक होने से त्रैस्वर्य से बोलना चाहिए। परन्तु अध्याहृत शब्द वैदिक न होने से त्रैस्वर्य से न बोलकर, अनन्यगत्या एकश्रुति से बोलना चाहिए। क्योंकि अध्याहृत शब्द लौकिक होने से त्रैस्वर्य से बोलना निषेध किया गया है और बिना स्वरधर्म के अचों का उच्चारण असम्भव है। अत: उदात्तधर्मविशिष्ट एकश्रुति से ही अध्याहृत शब्दों का उच्चारण करना चाहिए। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि महर्षि दयानन्द के द्वारा कर्मकाण्ड में विनियुक्त सभी वेदमन्त्र त्रैश्वर्य अर्थात् उदात्तादि स्वरों से ही करना चाहिए।[१७] क्योंकि इनकी एकश्रुति का विधान कहीं भी नहीं किया गया है। हाँ, गृह्यसूत्रों के मन्त्र और ऊह किये गये मन्त्रों (वचनों) का उच्चारण एकश्रुति से करना चाहिए। क्योंकि ये मन्त्र यथावत् संहिताग्रन्थों में उपलब्ध नहीं होते।

निष्कर्ष- स्वरयुक्त वेदमन्त्रों का उच्चारण जहाँ-जहाँ जिन-जिन मन्त्रों का एकश्रुति (उदात्तश्रुति) से करने का विधान किया गया है, उन्हें छोड़कर शेष सभी वेदमन्त्र त्रैस्वर्य से करना चाहिए। आचार्य कात्यायन ने यजमान सम्बन्धी मन्त्र, सुब्रह्मण्याह्वान मन्त्र को भी एकश्रुति से न बोलकर त्रैस्वर्य से बोलने का विधान किया है- एकश्रुति दूरात्सम्बुद्धौ[१८] यज्ञकर्मणि, सुब्रह्मण्या-साम-जप-न्यूङ्ख-यजमानवर्जम्[१९] (१.८.१९)। एकश्रुति का अर्थ उदात्तश्रुति है। जिसके उच्चारण को 'सस्वर' ही कहा जायेगा, 'स्वररहित' नहीं। 'उदात्तानुदात्तभेदरहित' यह जो अर्थ किया जाता है, उसका

तात्पर्य उच्च-नीच के भेद का अभाव है[२०], न कि उच्चत्व आदि स्वर का भी अभाव। "यज्ञकर्मण्यजप०" पाणिनि के इस सूत्र का तात्पर्य है कि 'वेदमन्त्रों में एकश्रुति की जब भी उपलब्धि होगी, वह केवल यज्ञों में ही होगी, अन्यत्र नहीं।[२१] जपादियों में तो एकश्रुति कभी भी नहीं होगी।[२२] पाणिनि के सूत्र को विधायक मानने पर यज्ञों में सभी मन्त्र एकश्रुति को प्राप्त करते हैं। पर यह मत श्रौतसूत्रकारों को अभीष्ट नहीं है। यथार्थतः पाणिनि श्रौतसूत्रों में विहित एकश्रुति का अन्वाख्यानमात्र करतें हैं।

टिप्पणी :

१ उदात्तादिस्वरविशेषानुपलब्धिरकारादिवर्णमात्रावबोध एकश्रुतिः (न्यासः, काशिका १.२.३३)इत्यादि।

२. ब्राह्मणग्रन्थों के वाक्यों को श्रौत एवं मीमांसादर्शन की परम्परा में 'श्रुति' माना जाता है और श्रुतिवाक्य को प्रबलतम माना जाता है- श्रुति-लिङ्ग-वाक्य-प्रकरण-स्थान-समाख्यानां समवाये पारदौर्बल्यमर्थविप्रकर्षात् (मीमांसादर्शन-३.३.१४)।

३. एकश्रुतेर्व्याकरणस्मृतौ विहितत्वात् (जैमिनीयन्यायमालाविस्तरः ९.२.८; पृ. ४७९)।

४. समुदाय में प्रधान या मुख्य एक ही होता है। अतः एकशब्द प्रधानवाचक हो गया है।

५ . प्रचय, एकश्रुति, उच्चश्रुति, उदात्तश्रुति, उदात्तमय, एकस्वर, तानस्वर प्रचित, प्रच, निचित आदि ये सभी शब्द समानार्थक हैं।

६. उदात्तादिभ्यो भिन्नः स्वर एकश्रुतिः (रामचन्द्रपण्डितः, स्वरप्रक्रिया-४६९), उदात्तानुदात्तस्वरितेभ्यो व्यतिरिक्तचतुर्थः स्वर एकश्रुतिः। तां चाध्यापकाः प्रचय इत्याचक्षते (जैमिनीयन्यायमालाविस्तरः ९.२.८, तृतीयवर्णकम्, पृ. ४७८)।

७. अनुदात्तं सर्वमपादादौ, त्वामी द्वितीयायाः (अष्टाध्यायी ८.१.१८,२३)।

८. निपाता आद्युदात्ताः (फिट्सूत्र-४.१२)।

९. ऐसे प्रसंग के लिए महाभाष्य में एक रोचक प्रसंग आता है- य उदात्ते कर्तव्येऽनुदात्तं करोति खण्डिकोपाध्यायस्तस्मै चपेटां ददाति- अन्यत् त्वं करोषीति (म. भा. १.१.१; पृष्ठ. १७०.२)। इससे भी जानना चाहिए कि स्वरों का उच्चारण यथानिर्दिष्ट यथावत् करना चाहिए, विपरीत (यथेष्ट) नहीं।

१०. शस्त्र, याज्या आदि मन्त्रों का "बहुलं छन्दसि" (अष्टा. १.२.३६) से विकल्प से एकश्रुति और त्रैस्वर्य प्राप्त होने पर इस विकल्प को बांधकर इनका केवल एकश्रुति का विधान किया गया है- तेषाम् 'विभाषा छन्दसि' इति त्रैश्वर्यं ऐकश्वत्यं या प्राप्तम् । 'एतेन' इत्यतिदेशाद् एकश्श्रुतिर्भवति (देचनातः, आश्व० श्री० १.२.२३)।

११. इस प्रकार के मन्त्रों के सभी प्रकारों के स्पष्टीकरण के लिए एक पृथक् लेख शीघ्र ही पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया जायेगा।

१२. अग्निमुर्या द्विचः कुकुत्पतिः पृथिव्या अयम्। अपां रेतांसि जिन्यतो३म् ॥ (८.४४.१६) इत्यादि।

१३. शस्त्रपाठ की ऋचाओं (मन्त्रों) के टिभाग को भी 'प्रणव' आदेश होता है।

१४. "उक्ता देवतास्तासां याज्यानुवाक्याः अग्निर्मूर्धा, भूयो यज्ञस्य०" (आश्र० श्री० १.६.१)। यहाँ पर आश्वलायन ऋषि ने 'अग्निर्मूर्धा' मन्त्र को सामान्यतया सभी यागों के लिए अग्निदेयताक पुरोनुवाक्या के रूप में विधान किया है। दर्शपूर्णमासेष्टि के प्रधानयाग के पुरोनुवाक्या के रूप में इसका विनियोग विहित है। दर्शपूर्णमासेष्टि की विकृतिभूत इष्टियों में भी पुरोनुवाक्या के रूप में ही यह मन्त्र अतिविष्ट हो जाता है। अग्निष्टोम आदि सोमयागों में प्रातरनुयाक एवं अनेकों शस्त्रपाठों में ऋग्वेद के हजारों मन्त्र पढ़े जाते हैं। इन शस्त्रमन्त्रों में भी इसका विनियोग नहीं हुआ है। जिससे इस मन्त्र को

एकबुति प्राप्त हो सके। पता नहीं वामन जैसे महान् वैयाकरण ने इस मन्त्र को एकश्रुति के सूत्र पर क्यों उधृत किया है?

१५. प्र यो बाजा अभिद्ययो हविष्मन्तो घृताच्या। देवाजिगाति सुम्नयो३म् ॥ (०३.२७.१) अग्न आ याहि चीतये गृणानो हव्यदातये। नि होता सत्सि बर्हिषो३म्।। (ऋ ०६.१६.१०) इत्यादि।

१६. कात्यायनश्रौतसूत्र के १.८.१६-१९ चार सूत्रों को व्याख्याकारों ने पूर्वपक्ष एवं सिद्धान्तपक्ष के रूप में, विभाजित कर अपव्याख्यान किये हैं, जो कि शास्त्रपरम्परा के अनुकूल न होने से अस्वीकार्य हैं।

१७. इसीप्रकार ब्राह्मणग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद्, श्रौतसूत्र आदि में पठित स्वरचिह्नरहित मन्त्रों को भी एकश्रुति से ही बोलना चाहिए।

१८. लोक में यदि एकश्रुति का प्रयोग होता है, तो दूर से सम्बोधन करने में ही होता है (द्र० अष्टाध्यायी - १.२.३३)।

१९. ''यज्ञकर्मण्यजपन्यूङ्खसामसु'' सूत्र को उपस्थित कर यज्ञों में मन्त्रों का स्वररहित उच्चारण करने के पक्ष को स्थापित करने वाले महानुभावों को भी सुब्रह्मण्य, साम, जप, न्यूङ्ख, यजमान मन्त्रों को यज्ञ में सस्वर ही बोलना पड़ेगा, इसमें कोई विकल्प नहीं। पहले इन का सस्वर उच्चारण सीखें, उसके बाद चर्चा करनी चाहिए।

२०. स्वराणामुदात्तादीनामविभागो भेदतिरोधानमेकश्रुतिः (काशिका १.२.३३)।

२१. इस प्रकार इस को 'नियामकसूत्र' मानने पर ''विभाषा छन्दसि'' (१.२.३६) सूत्र व्यर्थ हो जायेगा? नहीं होगा। क्योंकि वह व्यवस्थितविभाषा है, अर्थात् मन्त्ररूपी छन्द में नित्य त्रैस्वर्य होगा और ब्राह्मणरूपी छन्द में नित्य एकश्रुति होगी। ऐसा मत काशिका के पाठान्तरों में प्राप्त भी होता है- व्यवस्थितविकल्पोऽयमिति केचित्। व्यवस्था च वेदे मन्त्रदले नित्यं त्रैस्वर्यं ब्राह्मणदले नित्यमैकश्रुत्यमिति (काशिका १.२.३६ पर किन्हीं संस्करणों में मुद्रित है)। मेरी दृष्टि में यही मत समीचीनतर है।

२२. 'अजपन्यूङ्खसामसु' यह प्रसज्यप्रतिषेध है। यदि पर्युदासपक्ष को स्वीकार करते हैं, तो अनेकों दोष आते हैं। जैसे- 'तद्भिन्न तत्सदृश' नियम से जपादिभिन्न एवं जपादिसदृश मन्त्रों को ही यज्ञों में एकश्रुति होगी मन्त्रभिन्न अध्याहृतशब्द, ऊह्यमान वाक्य आदियों को एकश्रुति नहीं होगी (द्र० पदमञ्जरी १.२.३६)। इसीप्रकार गृह्यसूत्रादि में उपदिष्ट वाक्यों (मन्त्रों) में भी एकश्रुति नहीं होगी, अर्थात् त्रैस्वर्य होगा। जबकि इन सब में भी एकश्रुति शास्त्रकारों को अभीष्ट है। प्रसज्यप्रतिषेध पक्ष को मानने पर उक्त दोष नहीं आयेगा। इस पक्ष में यज्ञकर्म में अर्थात् यज्ञानुष्ठान में विनियुक्त सभी वाक्य (मन्त्र एवं अमन्त्र) एकश्रुति को प्राप्त होते हैं, जिनका श्रौतसूत्रों में विधान है। इसप्रकार प्रसज्यपक्ष में 'कर्म' ग्रहण का प्रयोजन भी दीखता है। अन्यथा आचार्य 'यज्ञ अजपन्यूङ्खसामसु' सूत्र ही बनाते। पर्युदास प्रतिषेध पक्ष में 'कर्म' ग्रहण का कोई प्रयोजन नहीं दीखता है- पर्युदासपक्षे तु कर्मग्रहणस्य चिन्त्यं फलम् (स्वरसिद्धान्तचन्द्रिका-४६२)। इस पक्ष में यह भी एक महान् दोष है। अतः प्रसज्यप्रतिषेध पक्ष को स्वीकार कर अर्थ करना ही श्रेयान् है।

निगमनीडम्-वेदगुरुकुलम्, पिडिचेड,
गज्वेल, सिद्धिपेट (तेलंगाणा) ५०२२७८]

जब तक सबकी रक्षा करने वाला धार्मिक राजा वा आप्त विद्वान् न हो तब तक विद्या और मोक्ष के साधनों को निर्विघ्नता से पाने के योग्य कोई भी मनुष्य नहीं होता है और न मोक्ष सुख से अधिक कोई सुख है।

महर्षि दयानन्द, यजुर्वेद, भावार्थ ८.५२

मोक्ष और उसकी प्राप्ति के साधन-३

पं. बालकृष्ण शर्मा

महर्षि दयानन्द की प्रथम जन्मशताब्दी फरवरी सन् १९२५ में मथुरा में मनाई गई थी। इस अवसर पर "दयानन्द जन्म शताब्दी स्मारक ग्रन्थ" प्रकाशित हुआ था। पण्डित बालकृष्ण शर्मा का यह महत्त्वपूर्ण लेख स्मारक ग्रन्थ से साभार पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

-सम्पादक

गताङ्क जुलाई द्वितीय से आगे...

अर्थात् जो प्रकृति में ठहरा है, परन्तु प्रकृति से भिन्न है, प्रकृति जिसको नहीं जानती, परन्तु प्रकृति जिसका शरीर है। उपासना के समय विकारिणी प्रकृति अथवा तज्जन्य पृथिव्यादि से निर्विकार परमात्मा को पृथक् समझकर उसकी उपासना करनी चाहिये। इस भाव से पृथक् अभिप्राय निकालकर ईश्वर को घी के समान संसार से पृथक् करना यह कथन युक्ति तथा प्रमाण से शून्य होने के कारण सर्वथैव त्याज्य है।

यहां तक किसी वस्तु की प्राप्ति में उस वस्तु का स्वरूप, वह वस्तु कहां प्राप्त हो सकती है उसका स्थान और उस वस्तु को प्राप्त करने के साधन यह तीन बातें लिख दीं। अब वस्तु की प्राप्ति में चौथी बात जो पुरुषार्थ उसको लिखकर हम इस निबन्ध का उपसंहार करेंगे। किसी कार्य सिद्धि के लिए पुरुषार्थ की अपेक्षा है। तब मोक्ष प्राप्ति जैसे महान् कार्य के लिए पुरुषार्थ की आवश्यकता होनी ही चाहिये यह निर्विवाद है। सांख्य दर्शन में कपिलाचार्य कहते हैं कि-

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।।

सांख्य

आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक इन तीन प्रकार के दुःखों में सब दुःखों का समावेश हो जाता है उनकी निवृत्ति ही अत्यन्त पुरुषार्थ है। उक्त पुरुषार्थ का आरम्भ जिस जीव ने जन्मान्तरों से किया हो वही मुमुक्षु वर्तमान जन्म में मोक्ष प्राप्ति का अधिकारी बन सकता है। कठोपनिषद् में नचिकेता का उदाहरण स्पष्ट कर रहा है कि उसको बालकपन से ही आत्मज्ञान की इच्छा इतनी प्रबल क्यों हो उठी? इसका उत्तर यही देना पड़ेगा कि उसके जन्मान्तरों के संस्कारों का ही यह माहात्म्य था। अन्यथा इतनी छोटी अवस्था का बालक गम्भीर प्रश्न सागर में कभी कूदता। वह संस्कार कहाँ से और कैसे आरम्भ होता है, इस बात का विचार इस छोटे से निबन्ध में करना दुष्कर है। इसलिए हम मुमुक्षु के वर्तमान जन्म में पूर्व संस्कारों का आरम्भ कहां से होता है, इसी बात का यहां विचार करेंगे। कवि कहता है-

भक्तिर्भवेमरणजन्मभयं हृदिस्थं, स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता, वैराग्यमस्ति किमतः परमर्थनीयम्।।

भर्तृहरि कहता है, परमात्मा में जिसकी भक्ति, अन्तःकरण में जन्ममरण का भय, बन्धु वर्ग से स्नेह का न होना, विषयासक्ति के विकारों का मन में न आना, संसर्ग दोषों से रहित एकान्त स्थान में प्रेम और वैराग्य यह छः बातें मनुष्य में आ जावें तो फिर ईश्वर से मांगने योग्य कौनसी बात शेष रही? अर्थात् कोई नहीं। यह छः बातें ही मनुष्य को मोक्ष देने वाली हैं। श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का जीवन चरित्र जिन्होंने पढ़ा है वे जानते है कि अपनी भगिनी और अपने चचा की मृत्यु से उनको इतना भय हुआ कि वे गृह और अपने परिवार को त्याग कर मृत्यु से बचने का उपाय कथन करने वाले गुरु की खोज में चल दिये! सैंकड़ों मनुष्यों को मरते हुए हमने देखा, सैंकड़ों मनुष्यों का अंत्येष्टि संस्कार हमने अपने हाथों से किया, परन्तु ऐसा वैराग्य हमको कभी न हुआ जैसा कि ऋषि दयानन्द जी को हुआ। इसी का नाम है।

जन्मान्तरकृत संस्कार! नचिकेता भी ऐसा ही संस्कारी था। जबसे वह कुछ समझने लगा, तभी से वह ब्रह्मनिष्ठ गुरु को प्राप्त करने का पुरुषार्थ करने लगा। यद्यपि समीप में बहुत से गुरु मिल सकते थे तथापि उनसे वह प्रसन्न नहीं हुआ। अन्त में बहुत खोज करने के बाद उसने यमाचार्य को प्राप्त किया। यमाचार्य ने उसकी परीक्षा करने के लिए सांसारिक उत्तमोत्तम सुखों का उसको लोभ दिखाया, परन्तु किसी से भी लुब्ध न होकर उसने आत्मज्ञान का ही प्रश्न आगे रखा। सांप्रत यत्रतत्र कान फूंकने वाले गुरु सहस्त्रों की संख्या में तैयार हैं। इस प्रकार पांच मिनिट में कान फूंक कर शिष्य बनाने वाली गुरु शिष्य परम्परा जिस देश में बड़े वेग से बलती हो, उस देश में सच्चे मोक्ष मार्ग का उपदेश करने वाला गुरु दुर्लभ हो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

जिधर देखो उधर उलटा ही पुरुषार्थ मोक्षप्राप्ति के लिए होता हुआ दिखता है। हरिद्वारादि चारों धामों के करने में बड़े-बड़े प्राणान्तक कष्ट सहे जाते हैं, उपवासादि का क्लेश इतना उठाया जाता है कि कभी-कभी किसी का इसमें प्राणान्त भो हो गया है, इधर से उधर व्यर्थ घूमने में जनता के लाखों रुपये खर्च होकर अमूल्य मनुष्य जीवन व्यर्थ जा रहा है। सच्चे गुरु को तथा सच्चे मोक्षशास्त्र को ढूंढने का प्रथम पुरुषार्थ होना चाहिये। इसके अनन्तर सदाचारी बनने में यथाशक्ति पुरुषार्थ करना चाहिये, क्योंकि बिना सदाचार के मोक्षप्राप्ति की आशा केवल निराशा ही है। अशास्त्रीय परिश्रम करने में मनुष्य कितना ही पुरुषार्थ करे उसका फल शून्य के सिवाय कुछ नहीं होगा। किसी विद्वान् ने वर्तमान समय के मूढ़तायुक्त प्रयत्न देखकर बहुत ही प्रासंगिक लिखा है वह कहता है-

मीनः स्नानरतः फणी पवनभुग् मेषस्तु पर्णाशनो,
नीराशः खलु चातकः प्रतिदिनं शेते विले मूषकः।
भस्मोद्धूलनतत्परः खलु खरो ध्यानाधिरूढो बकः,
सर्वे किं ननु यान्ति मोक्षपदवीं ज्ञानप्रधानं तपः।।

मछली सर्वदा जल में रहकर स्नान में तत्पर रहती है, सर्प केवल पवन खाकर ही अपनी जीविका करता है, भेड सर्वदा वृक्षों के पत्ते खाकर ही रहती है, चातक पक्षी सर्वदा उदासचित्त रहता है, चूहा प्रतिदिन भूमि में बिल बना कर ही रहता है, गदहा सर्वदा भस्म में लोटा करता है और बगला नदी आदि के तटपर आंखें मूंदकर ध्यान में तत्पर दिखता है। श्लोक का बनाने वाला कवि कहता है कि क्या यह उपर्युक्त सबके सब मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। इसका उत्तर देता है, नहीं। इस प्रकार सर्वदा स्नान करना, कुछ न खाना आदि व्यर्थ परिश्रम से कुछ न होगा, किन्तु ज्ञानपूर्वक तप ही मोक्ष को पहुंचाता है।

यहां कई मनुष्य यह कहते हैं कि आपका वेदान्त प्रतिपादित मोक्षमार्ग सच्चा है उसको हम मिथ्या नहीं कहते, परन्तु अज्ञानी जनता ऐसे गहन मार्ग पर चलने का ज्ञान वा बुद्धि नहीं रखती, तब उसके लिए मूर्तिपूजा और गंगा, पुष्करादि तीर्थों में स्नान करके ज्ञान वा मोक्ष के मार्ग का सरल साधन दिखाया जाय तो इस में क्या बुराई है? इसके उत्तर में हम कहेंगे कि मूर्तिपूजादि में किया हुआ पुरुषार्थ उलटा मनुष्य का अधःपात कराने वाला हुआ। साँप्रत मोक्षमार्ग के विषय में शिक्षित और अशिक्षित दोनों ही अज्ञानी बन रहे हैं। बड़े-बड़े नगरों से लेकर छोटे-छोटे ग्रामों तक कोई देखे तो उसको एक भी ऐसा महात्मा न दिखेगा जो सच्चे वेदान्त प्रतिपादित मोक्ष मार्ग पर चल रहा हो। प्रश्नकर्ता कहता है मूर्ति आदि का मार्ग अज्ञानियों के लिए है। अज्ञानी तो कभी दिन भर में एक बार मूर्ति का दर्शन करने मन्दिर में जाता हो, परन्तु शिक्षित तो मन्दिरों में अधिक धक्के खाते हुए देखे जाते हैं। शिक्षितों में एक वर्ग ऐसा भी है कि न तो वह मूर्तिपूजादि के मार्ग को माने और न सच्चे वेदान्तोक्त मोक्ष मार्ग को माने। खाना, पीना, शरीर को सजाने में सर्वदा तत्पर रहना यही उसका मोक्ष मार्ग है। मरण क्या है और मरने के बाद पापपुण्यानुस्वार जीवात्मा की क्या गति होती है, इस बात का विचार करने के लिए उसके पास समय ही

नहीं है। मन्दिरों में वर्षों तक मूर्ति की पूजा करने वाले बाबाजी और तीर्थों में रहने वाले पण्डा जी, प्राय: मूढ़ ही देखे जाते हैं। न तो यह बिचारे सभ्यतापूर्वक बात करना जानते हैं और न इनमें कुछ शिष्टाचार देखा जाता है। कुछ ऐसे हो जो सभ्यता से बोलना जानते हैं, परन्तु इतना ज्ञान उनको सत्संगति से अथवा अच्छे-अच्छे ग्रन्थों के पढ़ने से ही आया है, मूर्ति से अथवा तीर्थों में रहने से नहीं। इसलिए हम तो कहेंगे कि मूर्तिपूजा और तीर्थस्नानादि से मोक्ष मिलता है, यह अज्ञान भारतवर्ष में न फैलता तो आज इस भारतवर्ष में सच्चे मोक्षमार्ग को जानने वाले तथा उस मार्ग पर चलने वाले पांच, दस वा बीस महापुरुष अवश्य दिखते और उनके दर्शन से संसार के लोग भारतवर्ष के सौभाग्य के अवश्य गीत गाते! आज यहां की यह दशा है कि जो भारतवर्ष प्राचीन समय में पारमार्थिक विषय में सब का गुरु था, आज उसी की सन्तान एक कंकरी से लेकर पहाड़ तक को ईश्वर मान कर पूज रही है।

अब यहां कोई यह प्रश्न करे कि मूढ़ जनता को ईश्वर वा मोक्ष की प्राप्ति के विषय में क्या उपाय करना चाहिये? इसके उत्तर में हम यही कहेंगे कि परम कारुणिकता से मूढ़ प्रजा के लिए यह प्रश्न अवश्य हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं। ऐसी मूढ़ जनता के लिए शास्त्रों ने एक ही मार्ग दिखाया है कि **तश्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद्भूतिकामः**। उपनिषद् में लिखा है कि अपनी उन्नति चाहने वाले मनुष्य को आत्मज्ञानी के समागम में रहना चाहिये और उसकी सेवा करनी चाहिये। उक्त आत्मज्ञानी के समागम से मनुष्य के मन में सच्चे मोक्ष मार्ग का प्रेम बढ़ता है। यही मूढ़ जनता के लिए ईश्वर वा मोक्ष प्राप्ति को पहिली सीढ़ी है। मनुस्मृति में भी लिखा है-

आचार्यो ब्रह्मलोकेशः। आचार्यो ब्रह्मलोकस्य प्रभुः। तेन सह विवादपरित्यागेन तत्संतूष्ट्या सु ब्रह्मलोकप्राप्तिः गौंणा ब्रह्मलोकेशत्यम्।

कुल्लूकभट्टः

आचार्य को ब्रह्मलोक का प्रभु इसलिए कहा है कि यदि मनुष्य आचार्य के साथ विवाद आदि छोड़ कर उसको सन्तुष्ट रखे तो वह सन्तुष्ट हुआ आचार्य उक्त मनुष्य को ज्ञान देकर ब्रह्मप्राप्ति का मार्ग सुलभ कर देता है। यहां ब्रह्म की प्राप्ति आचार्य के उपदेश के अधीन होने से आचार्य को ब्रह्मलोक का स्वामी कहा है वास्तव में नहीं। आजकल के आचार्यों ने उक्त श्लोक के समझने में बड़ी भूल की है, वे उक्त कुल्लूक की टीका को देखें। स्वामी शंकराचार्य जी ने भी लिखा है कि-

क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका;
भवति भवार्णवतरणे नौका।। -मोहमुद्गर

एक क्षणभर भी सत्पुरुष की संगति की जावे तो वह संसार सागर के तरने में नौकारूप हो जाती है। यदि कोई मनुष्य पाणिनीय अष्टाध्यायी जानना चाहे तो उसके लिए दो ही मार्ग सर्वसम्मत हैं। प्रथम मार्ग यह कि यदि पढ़ने वाले को वृत्ति का अर्थ लगाने योग्य संस्कृत आता हो तो वह स्वयं काशिका वृत्ति को देखकर अष्टाध्यायी के सूत्रों का अर्थ जाने। अथवा जिस विद्वान् ने अष्टाध्यायी पढ़ी हो, उससे शिष्य बनकर पढ़े। इन दो मार्गों के अतिरिक्त कोई कहे कि अजी! आप इतनी झंझट में क्यों पढ़ते हो? लो हम तुम्हें एक अत्यन्त सरल मार्ग पाणिनीय व्याकरण के पढ़ने का दिखाते हैं। तुम अष्टाध्यायी की मूर्ति बनाकर उसकी षोड़शोपचार से पूजा किया करो, तुम तकड़े वैयाकरण बन जाओगे! इस प्रकार उस व्याकरण के जिज्ञासु को व्याकरण की मूर्तिपूजा में कोई लगा दे तो वह उस जिज्ञासु का शत्रु हुआ वा मित्र, इसका उत्तर पाठक महाशय ही अपने मन में दे लेवें, हमे यहां लिखने की आवश्यकता नहीं है। इस इसी प्रकार वर्तमान समय में वेदान्त प्रतिपादित मोक्षमार्ग को अति दुष्कर कर्म समझ कर जिन्होंने अज्ञानियों के लिए, मूर्तिपूजा अतिसरल समझ कर निकाली है, उन्हें अज्ञानियों के सच्चे शत्रु समझिये। इन मूर्तिपूजा तथा तीर्थस्नानादि अज्ञानजन्य साधनों में फंसकर मूढ़ जनता सच्चे मोक्षमार्ग से इतनी दूर निकल गई है कि अब उसको लौटा कर प्राचीन मोक्षमार्ग पर

लाना उपदेशक के लिए बड़ा दुष्कर कार्य हो गया है।

अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्।

भगवद्गीता

जब संस्कारी मनुष्य सच्चे मोक्षमार्ग से लगता है, तब वह अनेक जन्मों में सिद्ध बनकर परागति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। मूर्तिपूजकों को तो अपने जीवन में जब सच्चे संस्कार का लेश भी नहीं लगता तब उनको अनेक जन्मान्तरों में भी मोक्ष की आशा ही नहीं। इसलिए मोक्ष प्राप्ति का चौथा साधन गुरु तथा शास्त्र का सेवन ही कहा है। इनको छोड़ कर अन्य साधनों में पुरुषार्थ करना व्यर्थ है, वह तो मोक्षमार्ग से उलटा मार्ग है।

जिस मोक्ष की प्राप्ति के लिए यह अल्पलेख लिखा गया है उसका स्वरूप क्या है? यह भी यहां लिख देना आवश्यकीय है। प्रकृति तथा प्रकृतिजन्य इस पांचभौतिक स्थूल भोगायतन शरीर से छूट कर सतरह तत्त्वों वाले लिंग शरीर से युक्त जीवात्मा परमात्मा का साक्षात्कार कर लेता है, उसी का नाम है ब्रह्मलोक वा मोक्ष की प्राप्ति है। कूटस्थ नित्य ब्रह्म सर्वत्र होने से उसको प्राप्ति किसी लोकान्तर में जाने का नाम नहीं है। ब्रह्मैव लोकः को उपनिषदों में ब्रह्म को ही ब्रह्मलोक कहा है। वेदान्त में प्रकृति को दुःखमय और ब्रह्म को आनन्दमय कहा है। जैसे जल के समीप रहने से शीत का और अग्नि के समीप रहने से उष्णता का अनुभव होता है वैसे ही ब्रह्म का साक्षात्कारवान् पुरुष जिस एकरस आनन्द का अनुभव करता है उसका वर्णन वाणी से नहीं हो सकता वह अनुभवगम्य है। मुक्त जीवात्मा त्रिविध दुःखों से अत्यन्त छूट जाता है। फिर उसको न जल भिगो सकता वा डुबा सकता है, न अग्नि जला सकती है और न पवन उड़ा सकती है। मोक्ष प्राप्ति ही जीवात्मा के स्वातन्त्र्य की परम सीमा है। मनु में लिखा है कि **सर्वमात्मवशं सुखम्**। जीवात्मा का दूसरे किसी के वश में न रह कर आप ही अपने अधीन रहना ही परम गति है, यही मोक्ष और यही ब्रह्मप्राप्ति है।

अब इस लेख के उपसंहार में हमें इतना ही कहना है कि सच्चे वेदान्त प्रतिपादित मोक्षमार्ग की कितनी आवश्यकता है, यह हमने अन्वय और व्यतिरेक से इस निबन्ध में यथामति वर्णन करके दिखा दी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थचतुष्टय में मोक्ष को ही परमपुरुषार्थ माना है और इसी से ही बुद्धिप्रधान मनुष्य जीवन की सफलता शास्त्रों में मानी है। उस मोक्षमार्ग का सम्पूर्ण ज्ञान होना तो दूर रहा, परन्तु उसकी पहली सीढ़ी का भी मनुष्य जीवन में ज्ञान न होना, इससे बढ़कर शोक की वार्ता कौनसी हो सकती है? इसलिए मुमुक्षुजनों के हित के लिए हम उपसंहार में फिर लिख देते हैं कि जब तक जनता की प्रवृत्ति अवतारवाद, मूर्तिपूजा और जलमय तीर्थों से पापों की निवृत्ति होकर मोक्ष मिलना, इन तीनों बातों में ही रहेगी, तब तक मोक्ष की आशा सहस्रों जन्मों में भी पूर्ण नहीं हो सकती, क्योंकि उपर्युक्त तीनों ही मोक्ष के मार्ग ही नहीं किन्तु मोक्षमार्ग से दूर ले जाने वाले हैं। ब्रह्मनिष्ठ श्रोत्रिय गुरु और वेदान्त शास्त्र यही सच्चे तीर्थ हैं। जो मुमुक्षु जन अपने हिताहित को समझकर इन तीर्थों में स्नान करेंगे वे अवश्य ही मोक्षानन्द के भागी बनेंगे। योगभाष्य में लिखा है कि-

शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा,
स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः।
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः;
स्यान्नित्यमुक्तोऽमृतभोगभागी।।

सच्चा मुमुक्षु जब सोता, बैठता और मार्ग से चलता हुआ सर्वदा अनेक वितर्क रूपजाल को नष्ट करके शान्तचित्त हो जाता है तब उसके अन्तःकरण में निरन्तर इसी बात का निदिध्यास रहता है कि जन्म मरण रूप इस संसार के बीज का नाश कैसे हो? बस यही मुमुक्षु के मोक्षप्राप्ति की अन्तिम सीढ़ी है। जब ऐसी दशा किसी मुमुक्षु मनुष्य की होती है, तब समझ लेना चाहिये कि वह मोक्षानन्द का भागी बनकर मुक्त हो जायेगा। ओम् शान्तिः।

हमारे दैनिक जीवन में आर्यसमाज के १० सिद्धान्त

प्रो. विनय कुमार विद्यालंकार

बहुश्रुत उक्ति है कि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, अर्थात् मनुष्य को समाज की आवश्यकता होती है, वह एकाकी जीवनयापन नहीं कर सकता। वैसे तो मनुष्येतर प्राणी भी समूहों में रहते हैं, परस्पर आश्रित भी होते हैं, सहयोग व सुरक्षा का भाव भी देखा जाता है, किन्तु वे किसी व्यापक उद्देश्य का चिन्तन नहीं कर सकते और न क्रियान्वयन कर सकते। वेदों में जिस समाज की परिकल्पना प्राप्त होती है उसके कर्मानुसार चार विभाग भी मिलते हैं- ज्ञान-विज्ञान को आधार बनाकर जीवन संचालन, रक्षा एवं न्याय हेतु जीवन का समर्पण, कृषि व व्यापार हेतु समर्पित जीवन तथा सेवा को समर्पित जीवन। दूसरे शब्दों में कहें तो अज्ञान, अन्याय व अभाव को दूर करने बाले तीन वर्ग तथा इन तीनों में से किसी की विशेष योग्यता न होने पर सेवा की भावना से जीवन को चलाना।

सृष्टि के आदि से दीर्घावधि तक इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु मानव जीवन समर्पित रहा, जिनके माध्यम से पुरूषार्थ चतुष्ट्य की सिद्धि (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) प्राप्त करना। जब समाज में पतन प्रारम्भ हुआ तो उपर्युक्त उद्देश्यों से भटकता हुआ मानव बहुत अधोपतन या दुर्दशा तक पहुँच गया, ऐसे घनघोर पतन काल में मानव जीवन के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक एवं वैश्विक स्तर पर उद्देश्य बदल गये, जिसका परिणाम कुरीतियों, कुप्रथाओं, अवैदिक व अवैज्ञानिक सिद्धान्तों का बोलबाला हो गया। ऐसे में भारतवर्ष के मानव समाज में सुधार के लिए अनेक महापुरुषों ने प्रयास किए।

उन्नीसवीं शताब्दी में नवजागरण के पुरोधा महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने मानव समाज की जागृति हेतु अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। अन्य सुधारकों ने-ब्राह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, सत्यशोधकसमाज, थियोसिफकल सोसाइटी आदि संगठनों की स्थापना की। महर्षि दयानन्द जी ने इन सभी के कार्यों व सिद्धान्तों में किसी न किसी रूप में अपूर्णता अनुभव की, क्योंकि वे सभी सामाजिक कुरीतियों का जनक भी धार्मिक मान्यताओं एवं धार्मिक उपदेष्टाओं को ही मान रहे थे, किन्तु महर्षि जी ने धर्म के आदि स्रोत, ज्ञान के आदि स्रोत वेदों को सुधार का आधार बनाया व वेद वर्णित सम्बोधन 'आर्य' को गुणवाचक मानकर कहा कि 'आर्य: ईश्वर पुत्र:' मानव समाज को केवल दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- आर्य एवं अनार्य या आर्य एवं दस्यु। वेद एवं ईश्वर की आज्ञाओं को जानने वाले, मानने वाले एवं उन पर चलने वाले आर्य होते हैं तथा उनके विपरीत चलने वाले 'अनार्य' या 'दस्यु' कहलाते हैं।

ऐसे आर्यों का उद्गम स्थल भारतभूमि (आर्यावर्त) ही था इसको दृष्टिगत रखकर उन्होंने अपने सुधारवादी आन्दोलन की बागडोर जिस संस्था (संगठन) को सौंपने का संकल्प लिया-उसको 'आर्यसमाज' नाम दिया। 'आर्यसमाज' संस्था के सदस्यों के लिए जो दस सिद्धान्त बनाए वे अत्यन्त उपयोगी, सर्वदा प्रासंगिक, सर्वस्वीकार्य व व्यक्ति से लेकर परिवार, समाज, राष्ट्र एवं विश्व को उन्नति के मार्ग पर ले जाने वाले हैं।

जिन दस सिद्धान्तों को 'आर्यसमाज के नियम' के रूप में प्रदान किया उनका दैनन्दिन जीवन में क्या महत्त्व व उपादेयता है उस पर संक्षेप में विचार करना इस आलेख का उद्देश्य है।

आर्यसमाज के दस नियम (सिद्धान्त)-

प्रथम नियम- ''सब सत्य विद्या एवं जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।'' मनुष्य के लिए यह विचारणीय प्रश्न रहा है कि ज्ञान का आधार व मूल स्रोत क्या है। यह तो हम कहते

हैं कि गुरु-परम्परा से ज्ञान प्राप्त होता चला आ रहा है, साथ ही दूसरी मान्यता है कि मनुष्य के पास अन्वेषण क्षमता है जिसके द्वारा प्रकृति में फैले हुए ज्ञान की खोज करता रहा है। प्रश्न यह उठता है कि सृष्टि के प्रारम्भ में सर्वप्रथम ज्ञान किसके द्वारा प्रदान किया गया? प्रथम गुरु कौन था? महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में भी इस प्रश्न का समाधान किया- ''स एष: पूर्वेषामपि गुरु: कालेनानवच्छेदात्'' (योगदर्शन) अर्थात् वही परमात्मा गुरूओं का भी गुरू (प्रथम गुरू) है जो किसी काल में बँधा हुआ नहीं है। प्रथम नियम में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने सब सत्य विद्याओं की बात की है- 'सब सत्य' एवं 'सत्य विद्या'- प्रथम विचार करें कि सब सत्य क्या है? उत्तर मिलता है जो 'तत्त्व' सदैव सत्य है, सत्तावान् है, नित्य हैं, न उत्पन्न होते हैं और न विनष्ट होते हैं वे तीन ही तत्त्व हैं-'ईश्वर', 'जीव' एवं मूल 'प्रकृति', ये तीनों सत्य तत्त्वों का एवं इनकी विद्या (ज्ञान) का आदि मूल अर्थात् निमित्त कारण वह परमेश्वर है। इसका अर्थ यह न लिया जाय कि ईश्वर से है जीव व प्रकृति उत्पन्न होते हैं। ऋषिवर कहते हैं कि इनकी विद्या का आदि कारण वह परमेश्वर है, ज्ञान का आधार परमेश्वर है। इसी नियम का दूसरा भाग है ''जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका भी आदि मूल परमेश्वर है।'' प्रश्न उठता है कि 'पदार्थ विद्या' क्या है? पदार्थ कहते ही मस्तिष्क में आता है मैटर-जड़ पदार्थ या भौतिक तत्त्व, किन्तु वास्तविक अर्थ यह नहीं है। पदार्थ शब्द का विच्छेद कीजिए-पद+अर्थ=पदार्थ। पद अर्थात् शब्द 'अर्थ' वह वस्तु जिसके लिए पद का प्रयोग हुआ है जैसे गौ, अश्व, हस्ती ये सब पद हैं और 'गौ' कहते ही जिस पशु विशेष का ग्रहण होता है वह गलकम्बल बाला, चार पैर, दो सींग, एक पूँछ बाला दूध देने वाला पशु गौ विशेष है। आशय यह हुआ कि 'पद' वेद ज्ञान को कहा है तथा 'अर्थ' लोक (ब्रह्माण्ड) में वह वस्तु जिसके लिए 'पद' प्रयुक्त हुआ है। पदार्थ का अर्थ हुआ वेद का ज्ञान जो सृष्टि में यथार्थ घटित होता है। महर्षि दयानन्द जी प्रत्येक विषय को गम्भीरता से लेते हुए स्पष्ट करते हैं यही उनका 'ऋषित्व' या 'वैशिष्ट्य' है।

इस प्रकार प्रथम नियम मनुष्यों के ज्ञान विषयक प्रश्नों का समाधान करता है कि यह समस्त विद्याएं या ज्ञान उस परमपिता परमात्मा ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही चार ऋषियों-अग्नि, वायु, आदित्य एवं अंगिरा द्वारा ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद के रूप में समस्त मानव जाति के लिए प्रदान किया। इसलिए यह कहना कि मनुष्य तो प्रकृति में भटकता रहा और स्वयं खोज करता रहा, सत्य नहीं है। यह सृष्टि उस ज्ञानवान् सर्वोच्च सत्ता ने रची है और उसी ने जीवन एवं जगत्' दोनों का गूढ़ ज्ञान भी प्रदान किया है जिसे 'वेद' कहा जाता है। हम जीवन में अपनी बुद्धि को ज्ञान पिपासु बनाकर वेद के ज्ञान को व्यवहार में लाने का प्रयास आजीवन करते रहें एवं अपने प्रश्नों का समाधान वेद ज्ञान के माध्यम से करते रहें।

द्वितीय नियम- ''ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान् न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। उसी की उपासना करनी योग्य है।''

इस नियम का प्रत्येक विचारशील मनुष्य के लिए महर्षि जी ने प्रणयन किया, ईश्वर के विषय में किसी जिज्ञासु के जितने प्रश्न या जिज्ञासाएँ हो सकती हैं, उन सभी का समाधान इस नियम में होता है। सर्वप्रथम ईश्वर का स्वरूप व्यक्त किया कि वह 'सच्चिदानन्द स्वरूप' है। वैदिक चैतवाद सिद्धान्त की स्थापना की इतनी सरल विधि और कहीं नहीं मिलेगी जितनी वैदिक चिन्तन में है। जिस जगत् को हम देखते हैं वह केवल 'सत्' है, Exist करता है। वर्तमान दृश्यमान् जगत् का मूल कारण (Basic cause) सदैव Exist करता है जिसे 'सत्'

कहा जाता है, चेतन जीवात्मा जो जन्म-मरण में आता है वह 'सत्' एवं 'चित्' है जो सदैव (तीनों कालों में) सत्तावान् भी है और 'चित्' (चेतन) भी है, एवं परमेश्वर (सर्वोच्च सत्ता) सत् भी है, चित् भी है और आनन्दस्वरूप भी है, उसका आनन्द स्वतः है, सर्वदा है, एकरस है, इसलिए वह सच्चिदानन्द स्वरूप है, दार्शनिक चिन्तन के आधार पर कहें तो परमात्मा नित्य शुद्ध, नित्य बुद्ध एवं नित्य मुक्त है जबकि जीवात्मा शुद्ध भी है व अशुद्ध भी हो जाता है। जीवात्मा बोधयुक्त भी होता है अर्थात् निमित्त से बुद्ध भी होता है और अबुद्ध या अबोध भी रहता है इसी प्रकार जन्म-जन्मान्तर के शुभ कर्म एवं उपासना से मुक्त हो सकता है किन्तु नित्य मुक्त नहीं है। जीवात्मा का आनन्द समय सीमा में होता है जबकि ईश्वर सदैव आनन्दस्वरूप होने से 'सच्चिदानन्द' है। इसी ईश्वर के १८ विशेषण या गुण इस नियम में बताए हैं जिनके द्वारा ईश्वर का सत्य स्वरूप स्पष्ट होता है। आनन्द की कामना वाले मनुष्य को उसी परमेश्वर की उपासना करनी चाहिए जिसके ये गुण हैं इन्हीं गुणों से गुणी का साक्षात्कार सम्भव है।

इस नियम में महर्षि जी ने सगुण और निर्गुण के विवाद का भी तार्किक समाधान दिया है- जैसे परमात्मा सच्चिदानन्द स्वरूप, सर्वशक्तिमान न्यायकारी दयालु आदि सत्तात्मक गुणों के कारण सगुण तथा अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि आदि अभावात्मक गुणों के कारण निर्गुण है। इसी नियम के एक-एक गुण की विस्तृत व्याख्या की जा सकती है जो उसके प्रति विश्वास एवं श्रद्धा को सुदृढ़ करने में सहायक हो सकती है।

तृतीय नियम- ''वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना- सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है'' जो वेद ज्ञान सृष्टि के आदि में परमात्मा द्वारा प्रदान किया गया वह किसी काल, वर्ग, स्थान विशेष के लिए नहीं था अपितु सार्वभौमिक, सार्वकालिक एवं सार्वजनीन (Universal Truth) था, आगे चलकर वह केवल पुरोहित की पोथी बनकर रह गया था। जो वेदमन्त्र भौतिक विद्याओं से लेकर, अध्यात्म की पराकाष्ठा तक का ज्ञान प्रदान करते थे, कोई भी क्षेत्र या पक्ष ऐसा नहीं था जिनका समस्त ज्ञान वेद में न हो, उन्हें केवल यज्ञ-कर्मकाण्ड तक सीमित करते हुए समाज के ९० प्रतिशत वर्ग को वेद पढ़ने व सुनने से भी वंचित कर दिया गया था उस ज्ञान को सर्वग्राह्य (Open to all) बनाने का यह नियम है। ऋषि ने वेद मन्त्र के माध्यम से ही घोषणा की वेद सभी विद्याओं के भण्डार हैं और सभी के लिए हैं-

ओ३म् यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।
ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय
(यजुर्वेद २६.२)

महर्षि जी का तर्क सटीक है कि यदि वेद ज्ञान ईश्वर का है तो वह पूर्ण है, पूर्ण सर्वज्ञ ईश्वर का ज्ञान एकांगी नहीं हो सकता तथा वह परमपिता अपनी किसी सन्तान (किसी की वर्ण या जाति) को उस ज्ञान से वंचित नहीं कर सकता।

चतुर्थ नियम- ''सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।'' महर्षि दयानन्द जी सदियों बाद ऐसी दिव्यात्मा के रूप में जन्मे जिनका सर्वाधिक आग्रह सत्य के प्रति रहा है यदि सच्चा 'सत्याग्रही' कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वे जब विद्या या ज्ञान की बात करते हैं तब 'सत्य विद्या' का प्रयोग करते हैं, ईश्वर के सत्य स्वरूप की बात करते हैं और मनुष्य जीवन में सत्य की स्थापना के लिए कहते हैं, सत्य से कदापि समझौता नहीं करने का सन्देश देते हैं। सत्य जब भी ज्ञात हो जाए तभी आग्रह व पूर्ण धारणा को तुरन्त त्यागकर सत्य को स्वीकार करने में ही कल्याण है, जब सत्य ग्रहण करने की भावना होगी तो असत्य को छोड़ने में भी कोई कष्ट नहीं होगा। भौतिक जीवन के दैनन्दिन व्यवहार में यदि सत्य को ग्रहण करने की प्रवृत्ति बन जाय तो अनेक कष्टों का निवारण सरलता

से हो जाता है किन्तु मनुष्य क्षुद्र स्वार्थ व क्षणिक सुख के लिए सत्य के स्थान पर असत्य का सहारा लेता है वही समस्त दु:खों का कारण बनता है। महर्षि पतंजलि का योगसूत्र कहता है कि जीवन में सत्य की प्रतिष्ठा या स्थापना हो जाने पर मनुष्य की समस्त क्रियाओं का फल उसके अनुसार प्राप्त होने लगता है-

''सत्य प्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्''

(योगदर्शन)

पंचम नियम- ''सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार कर करने चाहिए''- यह नियम प्रत्येक विचारशील मनुष्य को शिक्षा देता है कि उसे प्रत्येक कार्य स्वयं विचार कर करना चाहिए, किसी भी कार्य को करने से पहले उस कार्य के सम्बन्ध में निश्चय कर लेना चाहिए कि वह कार्य धर्म के दायरे में आता है या अधर्म के? यह निर्धारण कैसे हो कि 'धर्मानुसार' क्या है? तो महर्षि जी ने स्वयं उत्तर दिया कि धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य का विचार कर लें, जो सत्य है वही धर्म एवं जहाँ असत्य आजाय वहीं अधर्म हो जाता है। महर्षि की धर्म की कसौटी भी 'सत्य' ही है। यह नियम मनुष्य को जगाता है कि धर्म के क्षेत्र में आँख बन्द करके किसी के पीछे चलते जाना 'अन्धविश्वास' की प्रथा भयंकर है। धर्म को सत्य की कसौटी पर कसना आवश्यक है, सत्य का विचार ही धर्म का विचार है।

षष्ठ नियम- ''संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्‌देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।''

अभी तक व्यक्तिगत जीवन तक केन्द्रित विषय रहे जिससे समाज की मूल इकाई व्यक्ति सत्य विधाओं का ज्ञाता हो, दृढ़ ईश्वर विश्वासी हो, वह भी सच्चे ईश्वर को जानकर उसकी उपासना करे व जीवन को सत्य, वेद ज्ञान से आलोकित कर धर्म मार्ग पर चले। अब आर्यों का समष्टि के प्रति कर्त्तव्य बताया गया है- वह है 'संसार का उपकार करना', यह विचार कितना उदार व व्यापक है, किसी समाज विशेष के उपकार हेतु आर्यसमाज नहीं है, केवल हिन्दू समाज के लिए ही या केवल भारत वासियों के लिए हो-ऐसा नहीं है अपितु आर्यसमाज को संसार के उपकार का दायित्व महर्षि जी ने दिया है। इस नियम में विशेष विचारणीय बात यह है कि संसार का उपकार क्या है? क्या केवल बाह्य रूप से सहयोग देने या दान आदि से संसार का उपकार सम्भव है? प्राय: लोग यही कहते हैं कि भूखे को भोजन, नंगे को वस्त्र, जिसके पास घर नहीं है उसे आवास देना उपकार है। इस नियम की व्यापक सोच पर चिन्तन कीजिए-शारीरिक उन्नति एवं आत्मिक उत्नति के बिना समाज का उपकार सम्भव नहीं है। रोगी समाज, दुर्बल एवं व्यसनी समाज, कुरीतिग्रस्त समाज, आत्मज्ञान रहित समाज व अभिमानी समाज को बाह्य रूप से कितना भी सहयोग कीजिए वह निरर्थक ही रहेगा जब तक कि सभी मनुष्यों की शारीरिक, आत्मिक व सामाजिक उन्नति हेतु सहायता न की जाय। यह ज्ञान के द्वारा अधिक सम्भव है। वर्तमान में भी कहा जाता है कि किसी को धन या सुविधा बिना परिश्रम के मिल जाय तो वह अपाहिज हो जाता है इसलिए उसे धनवान् होने के लिए, बलवान् बनाने के लिए व आत्मिक शक्ति बढ़ाने के लिए उचित ज्ञान देना चाहिए। इसीलिए आर्यसमाज ने गुरूकुल खोले, व्यायामशालाएं खोलीं, अनाथालय खोले, गौशालाएं खोलीं, बाल विवाह बन्द करवाए, वृद्ध विवाह भी बन्द करवाए। जिस मातृ शक्ति को वेदज्ञान से वंचित किया या उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार दिलाया। इन सभी कार्यों से सामाजिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त हुआ।

सप्तम नियम- ''सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।'' यह नियम आर्यसमाज के सदस्यों/अनुयायियों का आचारशास्त्र है। आर्य के व्यवहार की आधारशिला विश्व प्रेम है, साथ ही यह विश्व प्रेम धर्म के अंकुश या नियंत्रण में है, क्योंकि निरंकुश 'प्रीति' मोह बन जाती है। धर्मयुक्त प्रेम यथायोग्य बर्ताव के रूप

में प्रकट होता है। जैसे दूध देने वाली गौमाता व हिंसक शेर आदि के साथ एक समान प्रेम सम्भव नहीं, उसी प्रकार समाज के हितकारी के साथ व घातक आतंकी के साथ एक जैसा प्रेम सम्भव नहीं है। भारतवर्ष में व्यक्तिगत अहिंसा के सिद्धान्त को राजाओं ने जब अपनाया तो परिणामस्वरूप पराधीनता (गुलामी) हुई। इसलिए महर्षि ने स्पष्ट कहा कि धर्मानुसार भी हो और यथायोग्य भी हो। जो भले सदाचारी धार्मिक व्यक्ति हैं वे चाहे किसी भी स्थान, मत या वर्ग के हों, उनसे प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए एवं जो हिंसक अत्याचारी, दुराचारी एवं दुष्ट आतंकी है उनके साथ यथायोग्य दण्ड देना ही धर्म ही होगा।

अष्टम नियम- ''अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए'' प्रत्येक मनुष्य का उद्देश्य आत्मोन्नति ही हो इसलिए अविद्या का नाश अर्थात् उसे दूर करके विद्या को स्थापित करना कर्त्तव्य है। महर्षि पतंजलि जी ने जो योगदर्शन में कहा उसे महर्षि जी ने सत्यार्थप्रकाश के नवम् समुल्लास में उद्धृत किया है- 'अविद्या' का अर्थ है अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा समझना। विद्या इसके विपरीत सत्य ज्ञान का नाम है। इस प्रकार की विद्या केवल पुस्तकों से प्राप्त नहीं हो सकती यह तो जीवन भर के सुसंस्कारों से ही प्राप्त होती है। इसलिए विद्या की प्राप्ति हेतु सोलह संस्कार, पंच महायज्ञ, आश्रम व्यवस्था का पालन व समाज में कर्माधारित वर्ण व्यवस्था का पालन ही सहायक होता है।

नवम नियम- ''प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए'' यह नियम भी मनुष्य के व्यक्तित्व को व्यापक व विस्तृत बनाने वाला है।

यह नियम सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझने की बात कहता है। व्यक्ति का हित समाज के हित के बिना सम्भव ही नहीं है। समाज में यह अज्ञान फैला हुआ है कि मैं सुखी हो जाऊँ औरों से क्या? इसी क्षुद्र स्वार्थ भावना ने मानव को पतन के गर्त में पहुँचा दिया है। महर्षि जी ने न केवल मानव जाति अपितु उससे भी आगे चलकर प्राणिमात्र के हित की चिन्ता की है। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड एक शरीर है और सभी प्राणी उसके अंग है, इसी प्रकार मानव जाति तक भी देखें तो सभी व्यक्ति समाज रूपी शरीर के अंग हैं, कोई अंग अपनी वृद्धि या विकास दूसरे अंगों की वृद्धि के बिना कदापि नहीं कर सकता। 'संसार की उन्नति की भावना रखना उसके लिए कार्य करना वस्तुतः अपनी उन्नति करना ही है। यह कृपा नहीं अपितु प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है। आज व्यक्ति केन्द्रित व्यवस्था दिखाई पड़ रही है जिसे Selfishness कहा जाता है। इस गम्भीर रोग का उपचार इस नियम में है 'खुदगर्जी' की प्रवृत्ति को समाप्त करने में यह नियम अत्यन्त उपयोगी है।

दशम नियम- ''सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।'' यह मानव समाज को सच्चे अर्थों में समाज बनाने का नियम है। स्वतन्त्रता व स्वच्छन्दता का भेद करता है। समाज तथा व्यक्ति के अधिकारों को नियम व अनुशासन में बांधने का यह नियम है। समाज का सदस्य होने से मनुष्य कहाँ तक स्वतन्त्र रह सकता है एवं कहाँ उसके लिए बन्धन आवश्यक है, इस बृहत् तत्त्व को एक सूत्र में कह दिया गया है। समाज का शासन वहीं तक होना चाहिए जहाँ तक समूचे समाज के हित या अहित का प्रश्न हो। ''वैयक्तिक हित साधन में प्रत्येक व्यक्ति स्वतन्त्र है।'' यह बात उन्नीसवीं शताब्दी में महर्षि कह रहे हैं यह जहाँ समाज के शासन को मर्यादित करने वाला नियम है वहीं व्यक्ति को भी समाज नियमों के नियन्त्रण में रहना आवश्यक बताया गया है।

वस्तुतः समाज हित और व्यक्ति हित दोनों का ध्यान रखना व्यक्ति का ही दायित्व है। व्यक्ति समाज

हित का ध्यान रखे और समाज व्यक्ति को उसकी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का अवसर भी दे, व्यक्ति अपनी प्रत्येक क्रिया में समाज के भले पर दृष्टि रखे एवं उसका चिन्तन करके कार्य करे तथा समाज व्यक्तियों के अधिकारों का रक्षक है, समाजशास्त्र का सार ये दो सूत्र हैं।

इस प्रकार महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा स्थापित आर्यसमाज विश्वकल्याण के लिए स्थापित हुई, जिसके सदस्यों/अनुयायियों के लिए पहले २८ नियम बनाए थे। कालान्तर में उन्होंने ही वे सभी उद्देश्य इन दस नियमों (सिद्धान्तों) में समाहित कर दिए। वस्तुतः मनुष्य योनि कर्म स्वातन्त्र्य की योनि है, भोग योनि भी है। मनुष्य संसार में तीन कर्त्तव्यों की पूर्ति के लिए है- (१) अपने साथ क्या करना चाहिए? (२) दूसरों के साथ क्या करना चाहिए? (३) परमेश्वर के साथ क्या करना चाहिए? ये दस सिद्धान्त इन्हीं तीन कर्त्तव्यों का स्पष्ट विधान करते हैं, जो प्रत्येक मनुष्य द्वारा स्वीकार किए जा सकते हैं। ये सार्वभौम व सार्वकालिक सिद्धान्त हैं जो सार्वजनीन भी हैं। इनको व्यवहार में लाने पर भोग और अपवर्ग दोनों उद्देश्यों की सिद्धि सम्भव है।

प्रोफेसर संस्कृत एवं प्राचार्य,
राजकीय महाविद्यालय, बेतालघाट, नैनीताल

महर्षि दयानन्द की २००वीं जयन्ती के अवसर पर आयोजित दुकान (स्टॉल) आवंटन

प्रतिवर्ष की भांति इस वर्ष ऋषि मेला १८, १९ व २० अक्टूबर (शुक्रवार, शनिवार व रविवार) २०२४ को ऋषि उद्यान में आयोजित होगा। उसमें आर्यजगत् का साहित्य, हवन सामग्री, अन्यान्य सामग्री की दुकान लगती हैं। इस वर्ष से स्टॉल किराया २०००=०० रूपये प्रति स्टॉल किया गया है। खुले में या अपनी इच्छानुसार स्टॉल लगाना निषिद्ध रहेगा। आप अपना पूर्ण सहयोग देकर इस कार्य में सहयोग करावें। जिन महानुभावों की पहले राशि जमा होगी उस क्रम से स्टॉल का निर्धारण होगा। ऋषि मेला-२०२४ हेतु दुकान (स्टॉल) आवंटन में तीन आधार रहेंगे- १- आर्य धार्मिक पुस्तक, २- हवन सामग्री, ओ३म् ध्वज आदि, ३- दवाईयाँ। आपको जितनी स्टॉल की आश्यकता है उसी अनुरूप राशि बैंक ड्रॉफ्ट या नगद या ऑनलाइन जमा करावें।

स्टॉल सुविधाः- कारपेट, दो टेबल, दो कुर्सी, २ ट्यूब लाइट प्रति स्टॉल। **स्टॉल साइज**- ७.५×१५ फीट।

ध्यातव्य- १. स्टॉल में रखी टेबल, कुर्सी आदि पूर्व निर्धारित सामग्री को इधर-उधर या अन्य स्टॉल में न बदलें। **२.** अतिरिक्त सामग्री की आवश्यकता हो तो टैन्ट हाउस के कर्मचारी से सम्पर्क कर प्राप्त करें तथा निर्धारित राशि तुरन्त भुगतान करें। **३.** बिस्तर, रजाई, चादर, तकिया को टेन्ट हाउस कर्मचारी से प्राप्त कर निर्धारित राशि जमा करा दें। ४. स्टॉल व्यवस्थापक को राशि की रसीद दिखाकर स्टॉल संख्या प्राप्त करें। बिना पूर्व अनुमति के स्टॉल में सामान न रखें, न अधिकृत करें। ५. आपके सक्रिय सहयोग व अनुशासन की अपेक्षा है। अनियमितता को स्थान न देवें। ६. अपना मोबाइल (चलभाष) नम्बर देना अति आवश्यक है। ७. आप अपना स्थाई पता अवश्य देवें। ८. स्टॉल में आप पुस्तकें/दवाइयाँ/अन्य सामग्री का उल्लेख अवश्य करें। ९. स्टॉल आवंटन हेतु अग्रिम राशि जमा करावें, अन्यथा विचार सम्भव नहीं होगा। १०. एक पासपोर्ट फोटो भिजवावें, जो परिचय पत्र के साथ अंकित हो। उसमें स्टॉल आवंटन संख्या भी अंकित की जायेगी। ११. स्टॉल आवंटन की सूचना निर्धारित अवधि में दी जायेगी। **नोटः**- किसी प्रकार का अवैदिक साहित्य एवं सामग्री न हो अन्यथा उचित कार्यवाही सम्भव होगी।

सम्पर्क-देवमुनि/भूदेव उपाध्याय-७७४२२२९३२७

मनुष्यों को ईश्वर से बुद्धि की कामना करनी चाहिये

श्री कन्हैयालाल आर्य

पिछले अंक का शेष भाग....

करता है। ग्रन्थकार ने अपने वेदभाष्य में इस मन्त्र के माध्यम से दोनों की प्रार्थना करते हुए इस मन्त्र के भावार्थ में लिखा है-

"मनुष्या: परमेश्वरमुपास्याप्तं विद्वांसं संसेव्य शुद्धं विज्ञानं धर्मज् धनं च प्राप्तुमिच्छेयुरन्या स्वैवं प्रापयेयु:" मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि वे परमेश्वर की उपासना और विद्वानों की संगति द्वारा पवित्र ज्ञान और धर्माचरण करते हुए धन की इच्छा करें और फिर दूसरों को भी दोनों चीजें प्राप्त करायें। धन बुरा नहीं, उपादेय होने से उसे प्राप्त करना आवश्यक है। किन्तु अपवित्र धन अग्राह्य एवं त्याज्य है। "श्रेष्ठं नो द्रविणम्" तथा "अग्ने नये सुपथा राये" इत्यादि श्रुति-वचन इसमें प्रमाण हैं।

इस मन्त्र की व्याख्या में 'स्वाहा' शब्द के निरुक्तकार द्वारा किये गये अर्थों को देखकर ग्रन्थकार द्वारा किया गया विशदीकरण मनन योग्य है और 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करते हुए उसे सदा ध्यान में रखना चाहिये।

बुद्धि की प्रार्थना करते हुए इस मन्त्र में परमेश्वर को 'अग्नि' नाम से सम्बोधित किया है। शतपथ (१/६/२/१०) में अग्नि को देवों का 'सुहृदयतम:-विद्वानों में सबसे उत्तम हृदयवाला कहा है। वहीं अन्यत्र (१/१/१/२)', "अग्निर्वै देवानां व्रतपति:" कहकर अग्नि को विद्वानों का रक्षक बताया है। इस प्रकार अग्नि शब्द परमात्मा के विशेष गुणों का द्योतक है। इन गुणों से युक्त परमात्मा से बुद्धि की याचना करना सर्वथा युक्त है। इससे यह भी प्रतीत होता है कि सद्बुद्धि और शुद्ध साधनों से प्राप्त धन परमात्मा की कृपा के बिना नहीं मिलता।

इस मन्त्र में ऋषि मेधाकाम: का शब्दार्थ संकेत करता है कि जब तक हम अपनी कामना के प्रति समर्पित न होंगे तब तक परमात्मा की कृपा नहीं होगी। मन्त्र के छन्द शब्द से स्पष्ट है कि अपनी मनोकामना पूरी करने के लिए आत्मनिरीक्षण तथा तदनुरूप सतत प्रयत्नशील रहना आवश्यक है।

आइये, एक दृष्टान्त के माध्यम से इस मन्त्र की मूल भावना को समझते हैं- एक सम्राट् अपने घोड़े पर सवार होकर अपनी राजधानी में रात्रि के समय घूमता था। एक दिन उसने एक वृक्ष के नीचे एक साधु को रात्रि में जागते देखा। सम्राट् ने साधु से पूछा, "आप क्यों जाग रहे हो?" साधु ने कहा, "मेरे पास भी कुछ है, उसकी रक्षा के लिए जाग रहा हूँ", सम्राट् ने कहा, "आपके पास तो कुछ दिखता नहीं, है कुछ क्या?" साधु ने कहा, "बाहर मत देखो, जो है वह भीतर है, उसके लिए जागता रहता हूँ। तुम बाहर की सम्पदा की रक्षा में जाग रहे हो और मैं भीतर की सम्पदा की रक्षा में जाग रहा हूँ। तुम बाहर सम्राट् हो और मैं भीतरी सम्पदा का सम्राट्-परिव्राट् हूँ। मृत्यु बतायेगी कि वास्तविक सम्राट् कौन है? वह जो बाहरी सम्पदा का स्वामी है या वह जो आन्तरिक सम्पदा का स्वामी है?" मेधा आन्तरिक सम्पदा है। 'देवता' इसी सम्पदा की उपासना करते हैं। इसकी रक्षा जागने पर ही होती है। जो सो जाता है- वह इस सम्पदा को खो देता है। जागते रहो, सोचो मत। नींद, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर- ये सब सम्पदा को छीन लेते हैं, लूट लेते हैं। इन लुटेरों से वही बच सकता है, जो जागृत है, जागरूक है। प्रत्येक क्षण जागरूक रहो, विवेक से जागो। प्रज्ञा की आँख सदा खुली रखो। मेधा परम सम्पदा है और शेष से सम्पदायें इसकी छाया हैं।

अत: जिसने मेधा को पा लिया, उसने सबकुछ पा लिया। मेधा मिलते ही परमात्मा मिल जाता है। परमात्मा न मिले तो समझना कि मेधा-प्रज्ञा नहीं मिली है।

विला नं. २३,२४, ट्यूलिप आइवरी, सेक्टर-७०, गुरुग्राम, हरियाणा।

परमहंस परिव्राजकाचार्य महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के २००वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष्य में

भव्य एवं दिव्य ऋषि मेला समारोह

कार्तिक कृष्ण १ से तृतीया सम्वत् २०८१ तदनुसार १८, १९, २० अक्टूबर २०२४

विराट् व्यक्तित्व महर्षि दयानन्द की समग्र मानव जाति ऋणी है। इस ऋण के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की एकमात्र उत्तराधिकारिणी संस्था परोपकारिणी सभा, अजमेर एक भव्य एवं दिव्य समारोह का आयोजन कर रही है। इस अवसर पर कई सम्मेलनों (यथा गोरक्षा सम्मेलन, वेद प्रचार सम्मेलन, सोशल मीडिया और आर्यसमाज, स्त्री शिक्षा सम्मेलन, युवा सम्मेलन, गुरुकुल सम्मेलन, राष्ट्र रक्षा सम्मेलन) का आयोजन होगा।

कार्यक्रम स्थल- ऋषि उद्यान, पुष्कर मार्ग, अजमेर

यजुर्वेद पारायण यज्ञ- का आरम्भ सोमवार १४ अक्टूबर से होगा व इसकी पूर्णाहुति समापन समारोह के अन्तिम दिन २० अक्टूबर को प्रातः १० बजे होगी। इस यज्ञ के ब्रह्मा प्रो. कमलेश कुमार शास्त्री अहमदाबाद होंगे।

विशेष आकर्षण

१. इच्छुक व्यक्तियों को वानप्रस्थ एवं संन्यास की दीक्षा। २. ऋषि के जीवन के ऊपर लेज़र शो।
३. ऋषि दयानन्द के जीवन पर प्रदर्शनियाँ। ४. संगठन का परिचय देने के लिए एक विशाल शोभा यात्रा।
५. वेद-कण्ठस्थीकरण की परीक्षा। ६. ऋषि दयानन्द के जीवन पर विशेष गोष्ठियाँ, नाटिकायें।
७. आर्य साहित्य एवं यज्ञादि के उपकरणों का विक्रय। ८. कार्यकर्त्ताओं तथा विद्वानों का सम्मान।

ऋषि लंगर- इस अवसर पर पधारने वाले श्रद्धालुओं के लिए पौष्टिक एवं स्वादिष्ट प्रातःराश तथा दोनों समय के भोजन की व्यवस्था परोपकारिणी सभा की ओर से होगी।

आवास-व्यवस्था- आप यदि समूह में रहना चाहेंगे तो ऋषि उद्यान तथा इसके अतिरिक्त विभिन्न विद्यालयों, आर्यसमाजों एवं धर्मशालाओं में व्यवस्था की जायेगी। यदि आप अपने लिए अलग से कमरों की व्यवस्था करना चाहते हैं तो निम्न दूरभाषों पर कम से कम १५ दिन पूर्व सूचना दे दें ताकि होटलों में व्यवस्था की जा सके। आप अपने आने के लिए निम्नलिखित दूरभाष पर रजिस्ट्रेशन अवश्य करा लें ताकि आपके आवास में कोई कठिनाई न हो।

सम्पर्क सूत्र - १. श्री रमेशचन्द भाट - 9413356728, २. श्री दिवाकर गुप्ता - 7878303382

आप से निवेदन है कि आप इस अवसर पर अवश्य पधारें। ऐसा अवसर आप के जीवन में दूसरी बार नहीं आयेगा तथा सभी जन अपने परिवार व समाज के सभी कार्यकर्त्ताओं सहित पधारकर महर्षि को हार्दिक श्रद्धांजलि प्रदान करें। महर्षि दयानन्द के स्वप्न को साकार करने हेतु प्रेरणा व उत्साह प्राप्त कर वेद धर्म के प्रचार-प्रसार को एक नई चेतना प्रदान करें।

इस महान् पर्व पर आर्यजगत् के अनेक प्रसिद्ध संन्यासी, मुनि, विद्वान्, विदुषी, भजनोपदेशक एवं राजनैतिक जगत् के कई महानुभाव पधार रहे हैं।

संन्यासी- १. स्वामी रामदेव जी, पतंजलि योगपीठ, हरिद्वार २. स्वामी प्रणवानन्द, गुरुकुल गौतमनगर, देहली ३. स्वामी डॉ. देवव्रत, संचालक सार्वदेशिक आर्यवीरदल ४. स्वामी ब्रह्ममुनि, महाराष्ट्र ५. स्वामी ऋतस्पति, गुरुकुल होशंगाबाद ६. स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक ७. स्वामी चिदानन्द सरस्वती, गुरुकुल निगम नीडम्, तेलंगाना ८. स्वामी विदेह योगी, कुरुक्षेत्र ९. स्वामी सच्चिदानन्द, राजस्थान १०. आचार्य विजयपाल, गुरुकुल झज्जर ११. आचार्य ऋषिपाल, गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ।

आमन्त्रित राजनैतिक व्यक्तित्व- १. आचार्य देवव्रत, राज्यपाल गुजरात राज्य २. श्री भजनलाल शर्मा, मुख्यमन्त्री राजस्थान ३. श्री गजेन्द्र सिंह शेखावत, केन्द्रीय संस्कृति मन्त्री ४. श्री वासुदेव देवनानी जी, अध्यक्ष विधानसभा राजस्थान ५. श्री घनश्याम तिवारी, राज्यसभा सांसद ६. श्रीमती अनिता भदेल, विधायक एवं पूर्व मन्त्री, अजमेर।

विद्वान् एवं विदुषी- १. प्रो. कमलेश शास्त्री, अहमदाबाद २. प्रो. राजेन्द्र जिज्ञासु, अबोहर, पंजाब ३. डॉ. रघुवीर वेदालंकार, दिल्ली ४. डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री, उ.प्र. ५. डॉ. रामप्रकाश वर्णी, एटा ६. डॉ. महेश विद्यालंकार, दिल्ली ७. पद्मश्री आचार्य सुकामा, हरियाणा ८. डॉ. सूर्यादेवी चतुर्वेदा, गुरुकुल शिवगंज ९. डॉ. प्रियम्वदा वेदभारती, नजीबाबाद १०. डॉ. धारणा याज्ञिकी, गुरुकुल शाहजहाँपुर ११. प्रो. नरेश कुमार धीमान, अजमेर १२. आचार्य विष्णुमित्र वेदार्थी, बिजनौर १३. आचार्य योगेन्द्र याज्ञिक, होशंगाबाद १४. डॉ. कुलबीर छिकारा, सूचना आयुक्त, हरियाणा १५. डॉ. जगदेव विद्यालंकार, रोहतक १६. आचार्य जीववर्धन शास्त्री, जयपुर १७. डॉ. रामचन्द्र, कुरुक्षेत्र १८. आचार्य अंकित प्रभाकर, अजमेर।

आर्यनेता- श्री सुरेशचन्द्र आर्य, प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा २. श्री प्रकाश आर्य, मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा दिल्ली ३. श्री राजीव गुलाटी, चेयरमैन एम.डी.एच. ४. ठाकुर विक्रमसिंह, अध्यक्ष राष्ट्र निर्माण पार्टी ५. श्री धर्मपाल आर्य, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, दिल्ली ६. श्री विनय आर्य, मन्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ७. श्री देवेन्द्रपाल आर्य, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, उ.प्र. ८. श्री किशनलाल गहलोत, प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान ९. डॉ. श्रीगोपाल बाहेती, प्रधान महर्षि दयानन्द निर्वाण स्मारक न्यास, अजमेर १०. श्री जितेन्द्र भाटिया, आर्यवीरदल दिल्ली ११. श्री देशबन्धु आर्य, उपप्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा हरयाणा १२. श्री सतीश चढ्ढा, महामन्त्री आर्य केन्द्रीय सभा देहली १३. श्री योगेश मुंजाल, प्रधान टंकारा स्मारक ट्रस्ट १४. श्री अजय सहगल, मन्त्री टंकारा स्मारक ट्रस्ट।

भजनोपदेशक - श्री दिनेश पथिक (पंजाब), श्री भूपेन्द्र सिंह आर्य

सम्पूर्ण कार्यक्रम के स्वागताध्यक्ष के रूप में श्री सुरेन्द्र कुमार आर्य, चेयरमैन, जे. बी. एम. ग्रुप उपस्थित रहेंगे।

इस समारोह हेतु आपका आर्थिक सहयोग आयकर की धारा ८० जी के अन्तर्गत दिए गये प्रावधान के अनुरूप आयकर मुक्त होगा। आपका सहयोग ही हमारा सम्बल है। सहयोग हेतु निम्न खातों का प्रयोग करें। ऋषि लंगर हेतु आटा, चावल, दाल, चीनी, घी, तेल आदि सामग्री भी प्रदान कर सकते हैं।

खाताधारक का नाम : परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINISABHA AJMER)

बैंक का नाम : भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर, बैंक बचत खाता संख्या : 10158172715

IFSC - SBIN0031588 UPI ID : PROPKARNI@SBI

निवेदक - ओम्मुनि वानप्रस्थी (प्रधान) कन्हैयालाल आर्य (मन्त्री)

SBI Payments
MERCHANT NAME : PROPKARNI SABHA
UPI ID : PROPKARNI@SBI
SCAN & PAY
BHIM SBI Pay BHIM UPI

डॉ. सुरेन्द्र कुमार- संरक्षक, पूर्व कुलपति गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार, डॉ. वेदपाल-संरक्षक एवं सम्पादक परोपकारी, श्री सज्जनसिंह कोठारी, सभा उपप्रधान, जयपुर, श्री दीनदयाल गुप्त, सभा उपप्रधान, श्री जयसिंह गहलोत, सभा उपप्रधान, जोधपुर, डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा, सभा संयुक्त मन्त्री, अजमेर, श्री लक्ष्मण जिज्ञासु, सभा कोषाध्यक्ष, नोयडा, आचार्य विरजानन्द दैवकरणि, पुस्तकाध्यक्ष, गुरुकुल झज्जर, डॉ. राजेन्द्र विद्यालंकार, अन्तरंग सदस्य, कुरुक्षेत्र, श्री वीरेन्द्र आर्य, अन्तरंग सदस्य, अजमेर।

अन्य ट्रस्टीगण- श्री शत्रुघ्न आर्य, श्री सुभाष नवाल, मुनि सत्यजित्, स्वामी विष्वङ् परिव्राजक, श्री विजयसिंह भाटी, श्रीमती ज्योत्स्ना धर्मवीर, डॉ. वेदप्रकाश विद्यार्थी, स्वामी ओमानन्द सरस्वती, डॉ. योगानन्द शास्त्री, श्री सत्यानन्द आर्य।

आयोजक- परोपकारिणी सभा, अजमेर

(महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की एकमात्र उत्तराधिकारिणी संस्था)

दयानन्द आश्रम, केसरगंज, अजमेर, राज.

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
ऋग्वेद संहिता	९००	५००	४००
अथर्ववेद संहिता	५५०	४००	३००
ऋग्वेद भाष्य नवम भाग	४००	३००	२२५
पञ्चमहायज्ञ विधि	६२	२०	१५
वैदिक संध्या मीमांसा	१०७	४०	३०
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर
(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)
बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक,
कचहरी रोड, अजमेर।
बैंक बचत खाता (Savings) संख्या-
0008000100067176
IFSC - PUNB0000800
UPI ID :
0510800A0198064.mab@pnb

विज्ञप्ति

सर्वसाधारण को सूचित किया जाता है कि महर्षि दयानंद सरस्वती की २००वीं जन्म-जयंती शताब्दी समारोह से सम्बन्धित किसी भी प्रकार की जानकारी के लिए कार्यालय समय प्रात: १० से सायं ५ बजे तक सम्पर्क कर सकते हैं।

- कन्हैयालाल आर्य, मंत्री, परोपकारिणी सभा, अजमेर

सम्पर्क - रमेश चन्द्र आर्य, ऋषि उद्यान कार्यालय, 0145-2948698

दिवाकर गुप्ता, परोपकारिणी सभा-कार्यालय, मोबाइल - 7878303382, 8890316961

'सत्यार्थ प्रकाश' एवं 'महर्षि दयानन्द जीवन-चरित्र' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति 'वैचारिक क्रान्ति' को जन्म दिया। अत: परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व 'विश्व पुस्तक मेला' दिल्ली में प्रतिवर्ष '**सत्यार्थप्रकाश**' के साथ '**महर्षि का जीवन-चरित्र**' एवं '**आर्याभिविनय**' पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ 'सत्यार्थप्रकाश वितरण' अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/- रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/- रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/- रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/- रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/- रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/- रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

- कन्हैयालाल आर्य, मंत्री, परोपकारिणी सभा

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - 8890316961

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अतः हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि
प्रधान

कन्हैयालाल आर्य
मन्त्री

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की निःशुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्रः ८८९०३१६९६१**

ओम्मुनि, प्रधान
९९५०९९९६७९

कन्हैयालाल आर्य, मंत्री
९९११९९७०७३

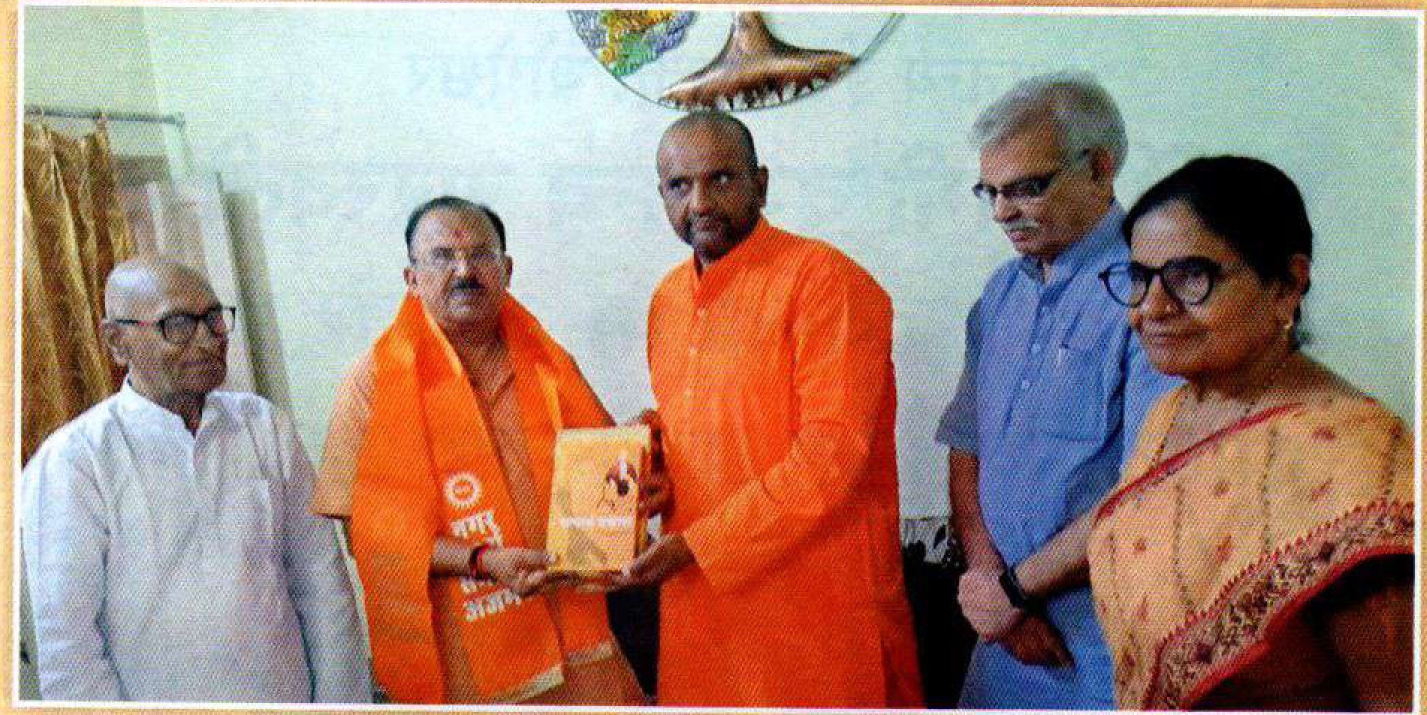

परोपकारिणी सभा के शिष्ट मंडल ने राजस्थान विधानसभा के अध्यक्ष श्री वासुदेवजी देवनानी से मुलाकात की। उन्हें महर्षि दयानंद सरस्वती द्वि जन्म शताब्दी समारोह के लिए आमंत्रित करने के साथ सभा की गतिविधियों की जानकारी भी दी। शिष्ट मंडल में स्वामी ओमानंद जी सरस्वती, सभा के प्रधान श्री ओममुनि, मंत्री श्री कन्हैयालाल आर्य, संयुक्त मंत्री डॉक्टर दिनेश चंद्र शर्मा और न्यासी श्रीमती ज्योत्सना धर्मवीर शामिल थे।

परोपकारिणी सभा के प्रधान श्री ओममुनि जी एवं मंत्री श्री कन्हैयालाल जी आर्य ने आर्यसमाज सुमेरपुर जिला पाली के सदस्यों को आगामी ऋषि मेले में पधारने हेतु निमन्त्रण दिया, आर्यसमाज सुमेरपुर ने एक लाख रुपये का सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया।

इस अवसर पर आर्यसमाज के प्रधान श्री गुलाबसिंह जी, श्री नटवर जी, अरुणा जी, अचलचन्द जी, केशवदेव जी आदि आर्य सज्जन उपस्थित रहे।

परोपकारिणी सभा के प्रधान श्री ओममुनि जी एवं मंत्री श्री कन्हैयालाल जी आर्य ने आर्यसमाज पाली के सदस्यों को आगामी ऋषि मेले में पधारने हेतु निमन्त्रण दिया।

आर्यसमाज पाली ने एक लाख रुपये का सहयोग प्रदान करने का आश्वासन दिया।

इस अवसर आर्यसमाज पाली के सदस्य तथा पदाधिकारी उपस्थित रहे।

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक   प्रेषण : ३०-३१ जुलाई २०२४   आर.एन.आई. ३९५९/५९

अनन्य ईश्वर भक्त, योगेश्वर

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती की

२००वीं जयन्ती के अवसर पर

परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा आयोजित

दिव्य एवं भव्य

ऋषि मेला

१८-२० अक्टूबर २०२४

सादर आमन्त्रण

प्रेषकः
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००

665   आजीवन
ंधी, आर्य
प्राचीन
, हनुमान रोड, नई